

TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182670

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. **H833** Accession No. **P. G. H4454**
Z97P

Author **जिम्स जस्टीकेन**

Title **पुनर्जन्म - अर्न्तु प्रकाशचन्द्र**

This book should be returned on or before the date last noted below

वदविदी

प्रकाशक :

चतुर्वेदी प्रकाशन समिति

कमतरी, आगरा (उ. प्र.)

शाखा १४-७-३, बेगम बाजार

हैदराबाद-दक्षिण (आं. प्र.)

प्रथम संस्करण 1200

मूल्य 3 . 00 रु.

प्राप्ति स्थान :

भारतीय पुस्तक भण्डार,

बेगम बाजार, हैदराबाद-दक्षिण (आं. प्र.)

मुद्रक

राष्ट्रभाषा प्रिंटिंग प्रेस

4-1-11/ए/3 तिलक रोड, हैदराबाद

अनुक्रमणिका

पुनर्जन्म एक गद्य-काव्य	२
भूमिका	५
पुनर्जन्म	१
प्रेमचक्र	१०५
भगोड़ा	१२३

पुनर्जन्म

एक गद्य-काव्य

फ्रान्स के महान् लेखक रोमाँ रौलाँ ने अपने एक लेख में लिखा था—“ज्विग के कलापूर्ण व्यक्तित्व और उनकी साहित्य-सृष्टि की कुंजी इस बात में है कि उनके हृदय में वह अदम्य जिज्ञासा मौजूद है, जिसकी प्यास कभी नहीं बुझती, और जो प्रत्येक जीवन की विशेषताओं को अपने आप में अनुभूत करने के लिए सदैव उत्सुक रहती है। इस जिज्ञासा ने उन्हें एक अत्यन्त उत्साहपूर्ण तीर्थ-यात्री बना दिया है। प्रतिभाशाली व्यक्तियों के वे घोर भवत हैं और उनकी रहस्यपूर्ण खूबियों की वे थाह ले लेते हैं, ताकि वे उनसे और भी अधिक प्रेम कर सकें। दरअसल स्टीफन ज्विग एक कवि हैं और फ्रायड की खतरनाक कुंजी (मनोवैज्ञानिक विश्लेषण शक्ति) उनके हाथ लग गई है! ज्विग आत्मा को जकड़ लेते हैं।”

लगभग बीस वर्ष पहले की बात है। ज्विग द्वारा लिखित (Kaleidoscope) नामक पुस्तक मेरे हाथ लग गई थी और उसमें वर्णित कहानियों ने मुझे अत्यन्त प्रभावित कर दिया था। वैसे तो उस संग्रह की सभी कहानियाँ और लघु उपन्यास अति उच्चकोटि के हैं, फिर भी (Transfiguration) (पुनर्जन्म) मुझे सबसे अच्छी लगी और उसकी गणना मैं अपनी अत्यन्त प्रिय रचनाओं में करता हूँ। न जाने कितनी बार मैंने उसे पढ़ा होगा।

पुनर्जन्म दरअसल एक गद्य-काव्य है। केवल चार घंटे में घटी घटनाओं को ज्विग ने अत्यन्त आकर्षक ढंग से पेश किया है, और आत्म-

दान का महत्व उन्होंने जिस कौशल के साथ इस कहानी में वर्णित किया है, वैसा हमें कहीं अन्यत्र पढ़ने को नहीं मिला। जिवन के लिखने का ढंग अत्यन्त हृदयग्राही है, बकौल रोमाँ रीला वे पाठक की आत्मा को अभिभूत कर देते हैं। उनकी रचना में ओज है, प्रसाद गुण है और प्रवाह है। जिवन की लेखन-शैली की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वे भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्तियों के स्वभाव और प्रवृत्तियों का सहानुभूतिपूर्ण अध्ययन करते हैं और किसी के ऊपर जज बम कर नहीं बैठते।

इस कहानी का नायक जर्मनी की फ़ौज में एक उच्च पदस्थ अफसर था, जिसका रहन-सहन बहुत ऊँचे दर्जे का था और साधारण जनता से जिसका कुछ भी सम्पर्क न था। केवल एक रात की कुछ घंटों की घटनाओं ने उसके सम्पूर्ण जीवनक्रम को ही बदल दिया और एक प्रकार से उसका पुनर्जन्म ही हो गया। आत्मदान ने उस दीवार को, जो उसे साधारण जनता से विभाजित करती थी, बिलकुल धराशायी कर दिया। अपने धन को बिना किसी भेदभाव के जिस उदारता के साथ उसने बाँटा, उसका वृत्तान्त पढ़ कर आश्चर्य होता है। एक जगह पर उसने लिखा था “दान से मुझे जो आनन्द प्राप्त हुआ और अत्यधिक उदारता ने जो मेरे जीवन में हर्ष दिया, उससे मेरा सम्बन्ध सम्पूर्ण जगत् से हो गया और तब मैं सोचने लगा कि दूसरों को आनन्द देना कितना सरल कार्य है। जिस तरह फाटक के उठा देने से किसी बाँध का पानी बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ने लगता है, उसी प्रकार दान द्वारा हम मनुष्यों के हृदयों को प्रेम की धारा से जोड़ सकते हैं। वह धारा बड़ी सजीव है, वह बड़ी तर्जन-गर्जन के साथ ऊपर से नीचे की ओर गिरती है और फिर पाताल से अनन्त आकाश की ओर चली जाती है।”

चन्द सिक्कों और थोड़े से नोटों की मदद से मनुष्य दूसरों की

कितनी चिन्ताओं को दूर कर सकता है और उनके जीवन में कितना हर्ष ला सकता है ।

जिवग ने कहानी नायक की अद्भुत दानशीलता का वर्णन करते हुए एक वेश्या तथा उसके गुणों का जो आकर्षक विवरण दिया है, वह पढ़ते ही बनता है । उसमें कामोद्दीपन या उत्तेजना का नामोनिशान नहीं और जो कुछ लिखा गया है बड़ी सहानुभूति के साथ लिखा गया है । विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों की मानसिक दशा का विश्लेषण और चित्रण जिस सफलता के साथ जिवग कर सकते हैं, उतनी खूबी के साथ शायद ही कोई दूसरा कर सके । कहानी-नायक अपनी दान-शीलता में कोई संकोच नहीं करता । कभी वह बीसियों गुब्बारे खरीद कर ऊपर उड़ा देता है तो कभी रोटी खरीद कर घोड़ों को खिला देता है और कभी वह अपने नोट और पैसे ज़मीन पर ही फेंक देता है, ताकि किसी अजनबी आदमी को अकस्मात् मिल जाए और उसके हार्दिक आनन्द का कारण बनें ।

यह कहानी कोई मामूली किस्सा नहीं है । उसके पीछे एक महान् सन्देश भी है । दरअसल उसमें किसी मनुष्य के लिए नव-यौवन या पुन-जिवन पाने का एक नुस्खा है । मनुष्य और मनुष्य के बीच की खाई, दानशीलता के द्वारा किस तरह पाटी जा सकती है, उसकी विधि बड़े आकर्षक ढंग पर इस कहानी में बताई गई है । कभी एक पुराना दोहा हमने पढ़ा था :—

“पानी बाढ़ें नाव में, घर में बाढ़ें दाम

दोऊ हाथ उलीचिये, यही सयानी काम ॥”

उसका उदाहरण हमें इस कहानी में पढ़ने को मिला ।

यद्यपि सभी लोग इस कहानी के लेखक का अनुकरण नहीं कर सकते, तथापि यथाशक्ति आत्मदान करते हुए वे भी अपने जीवन में नवीन यौवन का कुछ न कुछ अनुभव तो कर ही सकते हैं।

जिवग ने कहानी का अन्त बड़े विनम्रतापूर्ण हृदयस्पर्शी शब्दों में किया है :—

“इस विचार से मैं विचलित नहीं होता कि अकस्मात् मृत्यु का पंजा भेरी जिन्दगी का खातमा कर सकता है और मेरी इस कहानी पर दूसरे आदमियों की भी नज़र पड़ सकती है। जिस किसी ने इस प्रकार के घंटों के जादूभरे प्रभाव को कभी अनुभव नहीं किया, जिसका वर्णन मैंने किया है, वह उसे समझ ही नहीं सकेगा—जैसे कि मैं खुद ६ महीने पहिले कल्पना भी नहीं कर सकता था कि मामूली चलती हुई निरर्थक घटनाएँ मेरे जीवन को इस प्रकार प्रज्ज्वलित कर देंगी। ऐसे पाठक का खयाल करके मैं शर्मिन्दा नहीं होता, क्योंकि उसकी अकाल में मेरी रचना आवेगी ही नहीं, लेकिन कोई समझदार आदमी मुझ पर जज बन कर नहीं बैठेगा और वह घमंड भी नहीं करेगा। उसके सामने मैं लज्जित नहीं होऊँगा।

जिस किसी ने भी अपने आपको पा लिया है (पहचान लिया है) वह दुनिया में किसी चीज़ को खो नहीं सकता और जिस व्यक्ति ने निजी मनुष्यता को समझ लिया है, वह सम्पूर्ण मानव समाज को समझ सकता है।”

यदि कोई हमसे पूछे कि हम किन-किन विदेशी लेखकों की रचनाओं का अध्ययन करें तो हम बिना किसी संकोच के कहेंगे—“रोमांरीला, मैक्सिम गोर्की और स्टीफन जिवग की रचनाओं का।” यह त्रिमूर्ति निस्सन्देह वन्दनीय है।

फीरोज़ाबाद

—बनारसीदास चतुर्वेदी

२५-११-६६

भूमिका

“स्टीफन ज्विग ने तो आत्मघात कर लिया ।”

प्रातःकाल की चाय पीकर चुका ही था कि किसी ने आकर यह अशुभ समाचार सुना दिया ! दिल को ज़बरदस्त धक्का लगा । ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो किसी आत्मीय की ही मृत्यु हो गई हो । कई वर्ष पहले से मैं उनका प्रशंसक था, उनकी रचनाओं को मैंने खुद कई बार पढ़ा था और दूसरों को भी पढ़ाया था । मैंने देखा था कि कई विद्यार्थियों ने उनके छोटे-छोटे उपन्यास ‘लैटर फ़्रोम ऐन अननोन वोमेन’ (एक अपरिचित स्त्री का पत्र) तथा ‘एर्माऊ’ को अपने हाथ से टाइप कर लिया था और स्वयं मैंने एकाधिक बार उनकी कहानी ‘विराट’ का अनुवाद केवल हिन्दी जानने वाले भाइयों को सुनाया था । न जाने कितनी बार मैंने अपने मित्रों से कहा था :—

“सुप्रसिद्ध हॉकी खिलाड़ी ध्यानचन्द जिस तरह हॉकी की गेंद को जादूगरी के साथ ले जाते हैं, उसी प्रकार स्टीफन ज्विग हृद्गत भावों का आश्चर्य-जनक ढंग पर विश्लेषण करते हैं ।” महामानव रोमाँ रोलाँ से मैंने ज्विग का पता पूछा था और उन्होंने अपने २४ जनवरी १९३७ के पत्र में लिखा था :—

“फैसिस्ट हत्यारों की धमकियों की वजह से स्टीफन ज्विग को आस्ट्रिया छोड़ देनी पड़ी है । आज कल उनका पता है :—लन्दन

हैलमन स्ट्रीट ४६ लेकिन के अक्सर यात्रा पर रहो है।”

मैं स्टीफन ज्विग से पत्र-व्यवहार करने की कई बार सोच चुका था, पर प्रमादवश ऐसा न कर सका और अब वे इस संसार में ही नहीं रहे। बड़ा पश्चात्ताप हुआ।

खबर देने वाले से मैंने पूछा, “कौन कहता था कि ज्विग ने आत्म-हत्या कर ली?” उसने कहा, “मधुकर-मैनेजर सीताराम जी ने किसी पत्र में यह समाचार पढ़ा है।” ‘हिन्दुस्तान टाइम्स’ के दस-पन्द्रह दिन पहले से लगा कर उस दिन तक के सब अंक छान डाले, पर कहीं भी यह खबर न मिली।

सारा दिन अत्यन्त उद्धिग्न अवस्था में बीता। दूसरे दिन टीकम-गढ़ पहुँचने पर पता लगा कि ‘बोम्बे क्रानिकल’ नामक पत्र के साप्ताहिक संस्करण में यह समाचार एक लेख में छपा है। राँयटर ने उस विश्व-विख्यात लेखक की मृत्यु का समाचार भेजने की आवश्यकता ही न समझी थी। घुड़-दौड़ में दौड़ने वाले आगाख़ाँ के घोड़ों के मुक्क़ाबिले में भला किसी बड़े-से-बड़े लेखक के जीवन या मृत्यु का महत्व हो ही क्या सकता है।

मुझे रंजीदा देख कर एक उच्च पदाधिकारी ने कहा, “आज आप ख़ास तौर पर चिन्तित और उदास क्यों दीख पड़ते हैं?”

मैंने उत्तर दिया, “मेरे एक सबैप्रिय ग्रन्थकार का देहान्त हो गया है।”

“क्या तुम्हारा उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध था?”

“नहीं तो, मैं कई वर्ष से उनकी रचनाओं का प्रशंसक रहा हूँ।” मैंने उत्तर दिया।

“तब तो तुम अजीब आदमी हो । इसमें इतने दुःखित होने की बात ही क्या है ?” उन्होंने पूछा । मैं उन्हें कैसे समझाता कि किसी लेखक के लिए अपने आराध्य का देहान्त कितना कष्टप्रद हो सकता है ।

कलकत्ते की पिछली यात्रा में पता लगा कि स्टीफन ज्विग का आत्मचरित्र छप गया है । ‘द वल्ड आफ़ यस्टरडे’ की प्रति मंगा ली और दो महीने से उसका निरन्तर स्वाध्याय कर रहा हूँ । अपनी श्रद्धा की केवल एक बात और कह कर इस श्रद्धांजलि को समाप्त कर दूंगा । अपनी पिछली भयंकर बीमारी के दिनों में मुझे ज्विग के आत्मचरित ने जीवित रहने की प्रेरणा दी थी । यदि मेरे पास समय होता तो ज्विग के समस्त ग्रन्थों का अनुवाद करके अपने जीवन को सफल करता ।

पाठक इन व्यक्तिगत बातों के लिए मुझे क्षमा करें और मेरी निगाह से उम सच्चे साहित्य-साधक के जीवन की इक झाँकी देख लें ।

— बनारसीबास चतुर्बेदी

रेखा-चित्र

नवम्बर १९३१

सल्जबर्ग (आस्ट्रिया) का एक बुढ़ा पोस्टमेन हाँफता हुआ चिट्ठियाँ, तारों, ख़बरों और किताबों के पुलिन्दे से लदा हुआ एक साहब की कोठी की सीढ़ियाँ चढ़ रहा था । वैसे तो उनकी रोज़ की डाक ही काफ़ी भारी होती थी, पर आज तो उसने मानों कमर तोड़ दी । बात यह हुई थी कि आज एक आस्ट्रियन लेखक की पचासवीं वर्ष-गाँठ थी । वे जर्मन भाषा के एक महान् ग्रन्थकार और जर्मनी के समाचार-पत्र अपने कलाकारों की रजत-जयन्ती बड़ी शान के साथ मनाया करते थे । इसी कारण आज की डाक बहुत भारी हो गई थी ।

इंसल बरलैंग नामक प्रकाशन-संस्था ने लेखक की सब किताबों की तथा भिन्न-भिन्न भाषाओं में उनके जो अनुवाद हुए थे, उनकी सूची पुस्तकाकार प्रकाशित करके भेंट स्वरूप भेज दी थी। उस सूची में संसार की प्रायः मुख्य-मुख्य भाषाएँ आ गई थीं, यहाँ तक कि अन्धों के लिए भी उनकी किताबें ब्रेली पद्धति में लिख दी गई थीं। पाठकों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि जगत के इस अत्यन्त लोकप्रिय लेखक का नाम था स्टीफन ज्विग। जिन भाषाओं में उनके ग्रन्थों के अनुवाद हो चुके हैं, उनके नाम सुन लीजिए :—

आर्मीनियन	फ़रांसीसी	नार्वेजियन
बलगेरियन	जार्जियन	पोलिश
कंटेलेन	यूनानी	पोर्चुगीज़
चीनी	हेब्रू	रूमानियन
कोशियन	हंगेरियन	रशियन
ज़ैक	इटैलियन	सर्वियन
डैनिश	जापानी	स्पेनिश
डच	लैटिश	स्वीडिश
अंग्रेज़ी	लिथूनियन	अक्रोनियन
फ़िनिश	भराठी	यिडिश

एक बार 'लीग आव नेशन्स' (राष्ट्र-संघ) की 'अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक सहयोग' नामक संस्था ने जाँच करके अपनी रिपोर्ट में लिखा था—
 "इस समय संसार में सबसे अधिक अनुवादित ग्रन्थकार स्टीफन ज्विग हैं।"

स्टीफन ज्विग का जन्म १८८१ में वियना में हुआ था। उनके पिता मोराविया के एक यहूदी थे और वे बड़े चतुर व्यापारी थे।

ग्रामने कौशल के कारण वे अपनी पचासवीं वर्ष में करोड़-पति बन गए थे । जिवग की माता इटली के अनकोना नामक स्थान में पैदा हुई थीं और इटैलियन तथा जर्मन दोनों भाषाओं को बखूबी बोल सकती थी । जिवग के नाना के कुटुम्बी स्विटजरलैण्ड की सीमा के निकट रहते थे और वहाँ से वे भिन्न-भिन्न देशों को चले गए थे । कोई फ्रांस गए, कोई इटली तो कोई अमरीका । इस प्रकार उस परिवार के बच्चे जन्म से ही कई भाषाएँ बोल सकते थे । अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण को विकसित करना उनके लिए सर्वथा स्वाभाविक था ।

वियना का प्रभाव—

वियना नगरी अपने साहित्यिक तथा सांस्कृतिक वातावरण के लिए यूरोप भर में प्रसिद्ध थी । वह दो हजार वर्ष पुरानी थी और कम-से-कम एक हजार वर्ष से तो उसकी सांस्कृतिक परम्परा विना किसी बाधा के उत्तरोत्तर बढ़ती चली आ रही थी ।

उदाहरण के लिए वहाँ की कॉफी की दूकानें लोजिए । आने-दो-आने देने पर वहाँ कोई भी व्यक्ति चाय या कॉफी पी सकता था और साथ में विद्युत् के ही नहीं, जर्मनी, फ्रांस, इटली और अमरीका तक के ख़ास-खास बीसियों अख़बार तथा मासिक पत्र भी पढ़ सकता था । इन दूकानों पर साहित्यिक लोग अनेक विषयों पर वार्तालाप तथा वाद-विवाद किया करते थे । लिखने के लिए वहाँ कागज़-कलम का प्रबन्ध था और वे अपनी डाक भी वहाँ निपटा सकते थे । कभी-कभी वे ताश भी खेलते थे । दरअसल इन दूकानों ने सार्वजनिक क्लब का रूप धारण कर लिया था । आस्ट्रिया के सांस्कृतिक धरातल को ऊँचा करने और वहाँ के निवासियों के दृष्टिकोण को अन्तर्राष्ट्रीय बनाने में चाय-कॉफी की इन दूकानों का ज़बरदस्त हाथ था ।

विद्यार्थी-जीवन —

प्रारम्भिक पाठशाला में पढ़ने बाद ज्विग को जिमनेशियम नामक विद्यालय में पढ़ने के लिए भेजा गया। वहाँ के नीरस पढ़ाई के बोझ का मनोरंजक व्योरा ज्विग के आत्मचरित में मिलता है। जीवित भाषाओं में फ्रेंच, अंग्रेजी तथा इटैलियन तो पढ़ाई ही जाती थीं, पर उनके साथ-साथ ग्रीक तथा लैटिन का भी अध्ययन करना आवश्यक था। मातृभाषा जर्मन अलग। रेखा-गणित और विज्ञान के अलावा। ज्विग-ने उस शुष्क जीवन का जो करुणोत्पादक चित्र खींचा है, वह भारतीय विद्यालयों की वर्तमान शिक्षण-पद्धति से मिलता-जुलता है। यूरोप में तो परिस्थिति बहुत-कुछ बदल चुकी है। शिक्षा अब वहाँ भार-स्वरूप नहीं रही, विद्यार्थी समानता के धरातल पर अध्यापकों से बातचीत करते हैं और उनकी व्यक्तिगत आकांक्षाओं तथा रुचियों का भी ख्याल रखा जाता है, पर हमारे मुल्क में तो “वही रफ्तार बेढंगी जो पहले थी सो अब भी है।”

पारस्परिक प्रतिरोगिता —

उपर्युक्त कृत्रिम वातावरण के होते हुए भी यदि स्टीफन ज्विग ने अपनी प्रतिभा का विकास कर लिया तो उसका श्रेय उनके क्लास के विद्यार्थियों की स्पर्धा की भावना को मिलना चाहिए। एक तो उन दिनों वियना में नाटक, साहित्य तथा कला के लिए वैसे ही काफ़ी उत्साह था। समाचार-पत्र खासतौर पर इन विषयों पर लिखा करते थे। नगर की किसी भी साहित्यिक व सांस्कृतिक घटना को वे उपेक्षा की दृष्टि से न देखते थे और फिर जिस कक्षा में स्टीफन ज्विग भर्ती हुए थे, वह विशेष रूप से कला प्रेमी और साहित्यानुरागी थी। क्लास में पढ़ाया कुछ जाता था और चुर-छिप कर पढ़ते कुछ और ही थे।

लैटिन के व्याकरण के पृष्ठों के पीछे कविताओं के पन्ने जोड़ दिए जाते थे और गणित की कापियों पर सुन्दर-से-सुन्दर काव्यों की नकल कर दी जाती थी। शिक्षक लोग शिलर की कविताओं पर लेक्चर देते थे और विद्यार्थी लोग डैस्क में छिपा-छिपा कर नीत्शे के ग्रंथ पढ़ते थे। छात्रों में यह प्रतियोगिता रहती थी कि हमारा ज्ञान अपटूडेट रहे। वे पुस्तक विक्रेताओं की दूकानें छान डालते थे, नवीन किताबों की प्रतीक्षा बड़ी उत्कण्ठा से करते थे, पुस्तकालयों से ग्रंथ लाते थे और जो कोई विद्यार्थी नई बात का पता लगा लेता, तो वह दूसरे संगी-साथियों को उसे बतलाने में गौरव अनुभव करता था। उन लोगों में होड़-सी लगी रहती थी कि कौन पहले किसी नवीन चीज़ का पता लगा ले। इसके सिवाय विद्यार्थियों की प्रतिभा के विकास पर सबसे अधिक प्रभाव डाला वियना की चाय-काफ़ी की दूकानों ने, जिनका ज़िक्र हम ऊपर कर चुके हैं। सत्रह वर्ष की उम्र में स्टीफ़न ज़्विग ने जिस लगन के साथ साहित्य का अध्ययन किया था, वह लगन अपने जीवन के उत्तर भाग में वे कदापि प्रदर्शित नहीं कर सके। वाल्ट व्हिटमैन तथा अन्य कवियों की बीसियों कविताएँ उन्हें कण्ठस्थ थीं। आगे चल कर स्टीफ़न ज़्विग को साहित्य-जगत् में जो विश्वव्यापी कीर्ति मिली, उसकी नींव विद्यार्थी-जीवन में ही पड़ चुकी थी।

उन्होंने लिखा है :—

“विद्यार्थी जीवन की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक जिज्ञासा ने मेरे रक्त में प्रवेश कर लिया था—बौद्धिक प्रेरणा मेरी नस-नस में व्याप्त हो गई थी और आगे चल कर जो कुछ मैंने पढ़ा और सीखा उसका दृढ़ आधार उन्हीं वर्षों का अध्ययन है। यदि बाल्यावस्था में किसी आदमी का शरीर निर्वल रह जाए तो बड़ी उम्र में वह उसकी क्षति-पूर्ति कर सकता है, पर यदि कोई अपने में विश्वात्मा का अनुभव करना

चाहता हो तो उसके लिए यह अनिवार्य है कि वह यौवनावस्था में ही आत्मा की ग्रहणशक्ति को विकसित कर ले ।”

प्रथम काव्य-ग्रन्थ —

जब स्टीफ़न ज़्विग केवल उन्नीस वर्ष के ही थे, जर्मन-काव्य ग्रंथों के एक सर्वश्रेष्ठ प्रकाशक ने उनकी कविताओं का एक संग्रह छपाने के लिए स्वीकृत कर लिया। उस समय उस नवयुवक कवि को जो हर्ष हुआ, उसका बड़ा आकर्षक वर्णन उन्होंने किया है। उस ग्रन्थ की मुख्य-मुख्य समाचार-पत्रों तथा प्रतिष्ठित कवियों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी और जर्मनी के एक सर्वोत्तम गायनाचार्य ने उनकी छः कविताओं को स्वर-लिपियों में बद्ध कर दिया था।

पर स्टीफ़न ज़्विग अपनी रचनाओं के विषय में अत्यन्त सावधान और काफ़ी कठोर रहे हैं। उस काव्य-ग्रन्थ की एक भी कविता उन्होंने अपने संग्रह में शामिल नहीं की। उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का एक सिद्धान्त बना लिया था, कि कोई भी अधपकी चीज़ हमारे हाथ से न निकलने पावे। इसी कारण उन्होंने अपने प्रारम्भिक जीवन की कितनी ही पुस्तकें दुबारा नहीं छपने दीं। १९०१ में उनकी प्रथम पुस्तक छपी थी और सितम्बर १९४२ में, अपने आत्मघात के पहले, उन्होंने अपनी अन्तिम पुस्तक प्रकाशक को भेज दी थी। इस बयालीस वर्षीय अखण्ड साहित्यिक तपस्या का दृष्टांत विश्व-साहित्य में मुश्किल से ही मिलेगा।

साहित्यिक सफलता —

हम पहले बतला चुके हैं कि संसार की तीस भाषाओं में ज़्विग की पुस्तकों का अनुवाद हो चुका है। जर्मनी, फ्रांस और इटली में वे समान

रूप ने लोकप्रिय थे । उनके ग्रन्थ लाखों की संख्या में छप कर जर्मनी में घर-घर फैल गए थे । इटली में मुसोलिनी उनकी रचनाओं के प्रशंसकों में अग्रगण्य थे और रूस में मैक्सिम गौर्की ने उनके ग्रन्थों के रूसी अनुवाद की भूमिका लिखी थी । अंग्रेजी में उनके सत्रह ग्रन्थों का अनुवाद हो चुका है । उनकी किसी-किसी किताब की पचास-पचास हजार प्रतियाँ एक वर्ष में बिक गईं । उनकी कितनी ही पुस्तकों के आधार पर नाटक बनाए गए, कितनी ही पर फिल्में बनाई गईं और बाज़-बाज़ पुस्तक ढाई लाख छपी और फिर संसार का सबसे अधिक अनुवादित ग्रन्थकार होना क्या कम गौरव की बात है ?

इसका रहस्य—जिग ने बड़ी वितम्रता के साथ अपनी इस सफलता का रहस्य आत्मचरित में बतलाया है । वे लिखते हैं :—

“मुझमें एक बड़ी भारी कमजोरी है, वह यह कि किसी भी अनावश्यक वाक्य या प्रसंग को पढ़ कर मुझे बड़ी झुंझलाहट होती है, किसी भी अस्पष्ट बात से मेरा धैर्य छूट जाता है और कोई भी चीज़, जो पुस्तक के प्रवाह में बाधा डाले, मेरे लिए असह्य हो उठती है । बस मेरी यही स्वभावगत कमजोरी ही मेरी सफलता का मूल कारण है ।”

जिग के लिखने का तरीका यह था कि पहले तो वे जितना भी मसाला किसी विषय पर मिल सकता, इकट्ठा कर लेते और उसके लिए वे कोन-कोना छान डालते थे—क्या मजाल कि कोई चीज़ उनकी तेज़ निगाह से छूट जाय—और फिर प्रथम पाण्डुलिपि तैयार कर लेते थे । तब उनका वास्तविक कार्य प्रारम्भ होता था । अगर पहली कापी एक हजार पृष्ठ की होती तो अन्तिम में सिर्फ दो सौ ही पृष्ठ बाकी रह जाते थे । शेष आठ सौ को रद्दी की टोकनी में फेंक देना कोई आसान काम न था, पर इसमें उन्हें अलौकिक आनन्द मिलता था ।

एक बार जिवग महोदय बड़े प्रसन्न दीख पड़ रहे थे । उनकी पत्नी ने उनसे कहा, “मालूम होता है कि आज आपने अपनी किसी रचना की काफ़ी काट-छाँट कर डाली है ।”

जिवग ने बड़े अभिमान के साथ उत्तर दिया — “हाँ, मैंने एक पैरा-ग्राफ़ को साफ़ उड़ा दिया और घटना-प्रवाह में और भी गति ला दी ।”

‘काता और ले दौड़ें’ की नीति के अनुयायी इससे कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं ।

साहित्यिक योग —

जिवग लिखते हैं :—

“मैंने तमाम बाह्यी सम्मानों को अस्वीकार ही किया है । कभी किसी पद या प्रतिष्ठा अथवा उपाधि इत्यादि को ग्रहण नहीं किया । न किसी सभा का प्रधान बना और न किसी सुसाइटी या कमेटी अथवा परिषद् से अपना सम्बन्ध रखा । भोजों में शामिल होना मेरे लिए अत्यन्त कष्टप्रद रहा है और किसी से कुछ माँगने के पहले ही—चाहे वह प्रार्थना परोपकारार्थ ही क्यों न हो—मेरी ज़बान सूख जाती है । मैं जानता हूँ कि आज की दुनिया में इस प्रकार के ख्यालात दकियानूसी ही माने जाएँगे । पद और उपाधि इत्यादि से एक फायदा तो होता ही है, वह यह कि आदमी धक्कम-धक्के से बच जाता है । पर मेरे मन में एक आन्तरिक अभियान है, जिसे मैंने अपने पिता जी से पैतृक सम्पत्ति के रूप में पाया है और उसी अभिमान के कारण मैं इन तमाम उपाधि व्याधियों से बचा रहा हूँ ।”

जिवग के पिता जी करोड़पति थे और थे अव्वल नम्बर के स्वाभिमानी । वे किसी का भी अहसान अपने ऊपर नहीं लेना चाहते थे ।

उनके लिए मान-सम्मान प्राप्त करना बहुत आसान था, पर आत्माभिमानवश वे उनसे दूर ही भागते रहे। ज्विग ने भी इसी नीति का अनुसरण किया। जिस प्रकार कोई नट बाँस के सन्तुलन के द्वारा रस्ती पर चला जाता है और इधर-उधर नहीं झाँकता, उसी प्रकार ज्विग ने माता सरस्वती की आराधना में कभी कोई आघात नहीं आने दिया। 'समत्वं योगमुच्यते' योग की इस परिभाषा के अनुसार ज्विग सचमुच साहित्य-योगी थे।

नवीन लेखकों को उपदेश—

ज्विग ने अपने जीवन-चरित में नवयुवक लेखकों को एक बड़े पते की बात बतलाई है। वे लिखते हैं :—

“यदि कोई नवयुवक लेखक अपने लक्ष्य के विषय में अनिश्चित हो तो उसे मैं एक ही परामर्श दूँगा, वह यह कि वह किसी महान् लेखक की छोटी-मोटी पुस्तक का अनुवाद करे या फिर उसके आधार पर कोई ग्रन्थ लिख दे। नवीन लेखक जो भी सेवा आत्म-त्याग की भावना से करेगा, उसमें उसे अपनी कृति की अपेक्षा सफलता मिलने की विशेष सम्भावना रहेगी; क्योंकि भक्ति-पूर्वक किया हुआ कोई भी कार्य कदापि निष्फल नहीं होता।”

ज्विग का यह अनुभूत प्रयोग—आजमूदा नुसखा—था और यह हृदययंगम करने की चीज़ है। बरहेरन नामक फ्रांसीसी कवि की रचनाओं के अनुवाद में उन्होंने दो-ढाई वर्ष लगा दिए थे और इस प्रकार अपनी स्थायी कीर्ति की नींव रखी थी। अनुवाद इतना बढ़िया हुआ था कि खुद फ्रेंच भाषा की अपेक्षा जर्मन-भाषा में बरहेरन का नाम अधिक प्रसिद्ध हो गया।

सरस्वती के मन्दिर में सर्वोत्तम भेद—

महाकवि चकवस्त ने कहा था, “दीन क्या है, किसी कामिल की इबादत करना।” अर्थात् योग्यों की पूजा ही वास्तविक धर्म है। जिवग की रचनाओं को देख कर यह निश्चय हो जाता है कि उन्होंने भी योग्यों की पूजा को ही अपना साहित्यिक धर्म मान लिया था। यद्यपि जिवग अच्छे कवि थे, बहुत बढ़िया नाटककार और यूरोप में उनके मुकाबिले के आलोचक बहुत ही कम पाये जाते थे, तथापि उनकी कीर्ति मुख्यतया उनके लिखे जीवन-चरितों से ही चिरस्थायी रहेगी। उनका लिखा रोमां रोलां का जीवन-चरित एक आदर्श ग्रन्थ माना जाएगा। इनके सिवाय बालजक, डिकिन्स, स्टेण्डहल, फाउचे, ऐरेसमस, मेरी स्टुआर्ट, मेरी ऐण्टोइनेट और फ्रायड इत्यादि पर लिखे हुए, उनके विस्तृत निबन्ध ग्रन्थ अथवा रेखा-चित्र उनकी चरित्र-चित्रण की असाधारण योग्यता को प्रकट करते हैं। सूखी हड्डियों में जान डाल देना जिवग के लिए मानों बाएँ हाथ का खेल था। चरित-नायकों या चरित-नायिकाओं की अन्त-रात्मा में प्रवेश करके उनकी जीती-जागती मूर्ति पाठकों के सम्मुख खड़ी कर देने की कला में वे अद्वितीय थे।

रोमां रोलां से परिचय—

किसी प्रतिभाशाली लेखक के प्रसिद्धि प्राप्त कर लेने पर तो उसके सहस्रों प्रशंसक मिल जाते हैं। जिवग की दूरदर्शिता की तारीफ़ करनी चाहिए कि वे छिपे हुए हीरों को प्रकाश में लाया करते थे। उनका परिचय रोमां रोलां से जिम प्रकार हुआ, उसकी कथा बड़ी मनोरंजक है। जिवग महोदय एक बार किसी रूसी महिला के यहाँ निमन्त्रित किए गए थे। वे स्थापत्य-कला में विशेषज्ञ थीं और मूर्तियाँ बनाया करती थीं। जिवग महोदय ठीक वक्त पर उनके यहाँ पहुँचे, पर श्रीमती जी गैरहाजिर थीं—रूसी लोग भी हम भारतीयों की तरह ही समय के

ग रपाबन्द होते हैं । इसलिए ज्विग ने बैठे-ठाले एक पत्रिका हाथ में उठाली । वह रोमाँ रोलाँ की मित्र-मण्डली द्वारा सम्पादित थी और 'जीन क्रिस्टोफ़ी' नामक उपन्यास, जिस पर आगे चल कर नोबुल पुरस्कार मिला, इसी पत्रिका में धारावाहिक रूप से निकल रहा था । उन महिला के आने पर ज्विग ने उनसे पूछा—“ये रोमाँ रोलाँ महाशय कौन हैं ?” वे इसका कोई सन्तोष-जनक उत्तर न दे सकीं । पेरिस पहुँच कर ज्विग ने रोमाँ रोलाँ को तलाश करना शुरू किया । पर किसी से उनके बारे में पूरा-पूरा पता न चला । आखिरकार ज्विग ने अपनी एक पुस्तक रोमाँ रोलाँ के नाम भेज दी और उन्होंने उत्तर में लिखा, “आप मेरे यहाँ पधारने की कृपा कीजिए ।” ज्विग उनसे मिले और दोनों में जो घनिष्ट मित्रता स्थापित हो गई, वह जीवन के अन्त तक रही । १९२१ में उन्होंने जर्मन-भाषा में रोमाँ रोलाँ का जीवन-चरित प्रकाशित किया, जिसका अनुवाद अँग्रेज़ी में भी हो चुका है ।

अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण—

ज्विग संसार के नागरिक थे । अपनी कलम से उन्होंने कभी भी एक भी वाक्य ऐसा नहीं लिखा था, जो जातीय विद्वेष को फैलाने में सहायक होता । यद्यपि राष्ट्रीयता के नक्कारखाने में उनकी तूती की आवाज़ किसी ने नहीं सुनी, तथापि वे अपने निर्दिष्ट मार्ग से कभी विचलित नहीं हुए । जिन्होंने प्रथम महायुद्ध में (१९१४ से १९१८ तक) विचार-स्वातन्त्र्य का झण्डा ऊँचा रखा और जो घृणा तथा विद्वेष के वातावरण से ऊँचे उठ सके, ऐसे यूरोपियन लेखकों में रोमाँ रोलाँ तथा स्टीफ़न ज्विग अग्रगण्य थे और इस पिछले महायुद्ध का दुष्परिणाम दोनों को ही भयंकर रूप से भोगना पड़ा । दोनों ही हिटलरशाही की बलिवेदी पर बलिदान हो गये ।

नाजीशाही के जोर-बुलम—

यदि किसी लेखक को नाजीवाद के अत्याचारों को सबसे अधिक मात्रा में सहन करना पड़ा तो वे स्टीफन ज्विग ही थे। उनकी किताबें लाखों की संख्या में जर्मनी में फैली हुई थीं। वे सब जब्त कर ली गईं, जलवा दी गईं और बची-खुची तालों में बन्द कर दी गईं। उन्हें एक मुल्क से दूसरे मुल्क को भागे-भागे फिरना पड़ा। उनका लाखों की कीमत का साहित्यिक संग्रहालय—जिसकी गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ प्राइवेट म्यूजियमों में की जानी चाहिए—छिन्न-भिन्न हो गया और उनके पारिवारिक कष्ट भी पराकाष्ठा को पहुँच गए। अपनी पूज्य वृद्धामाता की अन्तिम बीमारी के दिनों में वे उनकी मृत्युशय्या के पास भी न पहुँच सके। ज्विग आस्ट्रियन थे, यहूदी थे, संसार के नागरिक थे, उनका दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय था और वे शान्तिवादी थे। इनमें से एक ही चीज़ उनकी अनुभूतियों को कष्टमय बनाने के लिए पर्याप्त थी, पर उनमें तो ये सभी एकत्र हो गई थीं। इसलिए उन्हें भरपूर मात्रा में कालकूट का पान करना पड़ा—ज़हर के एक-दो प्याले नहीं, घड़े-के-घड़े पीने पड़े।

अन्तिम पत्र—

इस संक्षिप्त लेख में हम ज्विग के आत्मचरित का शतांश भी नहीं दे सकते। उसके लिए तो एक लेख-माला ही लिखी जानी चाहिए। यहाँ हम उनका अन्तिम पत्र प्रकाशित करते हैं, जो उन्होंने अपनी पत्नी के साथ विषपान करने के पहले २२ फरवरी सन् १९४२ को लिखा था।

निवेदन

“स्वेच्छा से और अपने होश-हवास की दुरुस्तगी में अपने प्राण-त्याग करने के पहले मैं अपना अन्तिम कर्तव्य-पालन करना चाहता हूँ।

मैं ब्रेजिल देश की आश्चर्य-जनक भूमि को, जिसने मुझे प्रेमपूर्ण आश्रय दिया, हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। इस भूमि-खण्ड के प्रति मेरे हृदय में श्रद्धा दिनो-दिन बढ़ती ही गई और यदि कोई ऐसा देश है, जहाँ मैं अपना जीवन पुनःप्रारम्भ कर सकता था तो वह ब्रेजील ही है; क्योंकि मेरी मातृ-भाषा की भूमि मेरे लिए समाप्त हो चुकी है और मेरी आध्यात्मिक मातृ-भूमि यूरोप ने आत्मघात कर लिया है।

“लेकिन अब मैं साठ वर्ष से ऊपर का हो चुका और अब बिल्कुल नवीन जीवन प्रारम्भ करने के लिए असाधारण शक्ति की आवश्यकता है। जो शक्ति मुझमें थी, वह वर्षों तक लामकान होकर इधर-से-उधर भागे फिरने में खर्च हो चुकी है। इसलिए मैं यही ठीक समझता हूँ कि इस ज़िन्दगी का खातमा कर दिया जाए। जिस जीवन में मुझे बौद्धिक परिश्रम से सबसे अधिक आनन्द मिला और जिसमें मैंने व्यक्तिगत स्वाधीनता को ही संसार की सर्वोच्च वस्तु समझा, उसकी समाप्ति ठीक समय पर, जबकि मैं तन कर खड़ा हो सकता हूँ, हो जानी चाहिए। सम्पूर्ण मित्र-मण्डल को मैं नमस्कार करता हूँ। ईश्वर करे कि दीर्घरात्रि के बाद उषा के दर्शन करने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हो। मैं तो अपना धैर्य खो चुका हूँ, इसलिए उसके पहले ही बिदा होता हूँ।

स्टीफन ज़िग

पेट्रोपोलिस

२२-२-१९४२

ज़िग के जीवन पर एक दृष्टि—

जहाँ तक हृदय की कोमल भावनाओं के विश्लेषण और चित्रण का सम्बन्ध है, ज़िग की गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ लेखकों में कवीन्द्र रवीन्द्र और रोमां रोलां के साथ ही की जाएगी, पर जहाँ लेखन-प्रवृत्ति

की वफ़ादारी का प्रश्न है, ज्विग निःसंदेह अद्वितीय थे । ज़िन्दगी के जो उतार-चढ़ाव उन्होंने देखे, जिस तरह बेघर-बार के हो कर उन्हें एक देश से दूसरे देश को भागना पड़ा, यहूदी होने के कारण उन्हें घृणा का जितना अधिक शिकार बनना पड़ा और अपनी कोमल भावनाओं पर जितने ज़बरदस्त आघात सहने पड़े, उनके मुक़ाबले में संसार के बड़े-से-बड़े साहित्य-सेवियों की तपस्या फीकी पड़ जाएगी । ज्विग दुःखों के विश्वविद्यालय में से आचार्य हो कर निकले थे, जबकि दूसरे लोग केवल प्रवेशिका परीक्षा पास कर पाते हैं या हृद-से-हृद स्नातक ही बन पाते हैं ।

सम्भवतः कुछ महानुभाव ज्विग के आत्मघात के महत्व को न समझ सकेंगे । उनसे हमारा अनुरोध है कि वे उनके विस्तृत आत्मचरित को पढ़ें । वीणा के तार भला घन की चोटों को कब तक सहन कर सकते थे ।

यद्यपि हिटलरशाही तथा नाज़ीवाद को ख़ासी करारी चोटें सहनी पड़ी हैं और दोनों ही आज धराशायी होकर धूल चाट रहे हैं, तथापि जो मर्मन्तक चोट ज्विग ने अपने इस आत्मचरित से दी है, उसकी क़सक सबसे अधिक व्यापक होगी ।

ज्विग का आत्मबलिदान इस बात का प्रमाण है कि सहस्रों वायुयान तथा लाखों बम जो काम नहीं कर सकते, वह एक दृढ़-प्रतिज्ञा आत्मा कर सकती है । विशालकाय हाथी के क्षुद्र चींटों द्वारा माने जाने की बात सच है या नहीं, हम नहीं जानते, पर नाज़ीवाद के भूत के लिए ज्विग की जीवनी शिव की विभूति है । एक साहित्य-साधक सती की तरह साधना करने और अपनी समस्त शक्तियों को केन्द्रित करके जितना ऊँचा उठ सकता है, ज्विग का जीवन इसका एक उज्ज्वल दृष्टांत है ।

अन्तरोष्ठीय प्रेम तथा विश्वव्यापी शान्ति के जिन सिद्धान्तों के लिए जिवग जिये और मरे, वे सिद्धान्त आज भी संसार में स्थापित नहीं हो पाये और आज भी जगत् के आकाश में घृणा तथा विद्वेष की घटाएँ छाई हुई हैं। पर यह अन्धकारमय रात्रि बहुत दिनों तक नहीं रहेगी और जिस उषा का स्वप्न जिवग ने देखा था, उसके कभी-न-कभी दर्शन अवश्य होंगे।

जिस महामानव ने अपनी जीवन ज्योति द्वारा द्वेष के अन्धकार को दूर करने और प्रेम के प्रकाश को लाने के लिए भरपूर प्रयत्न किया और फिर जिसने अपनी इस जीवन-ज्योति को नाटकीय ढंग से बुझा कर उस पर की वीभत्स कालिमा के पूर्ण रूप से दर्शन करा दिये, उस अद्वितीय साहित्य-साधक स्टीफन जिवग की स्मृति में हमारी यह श्रद्धांजलि अर्पित है।

जिवग अमर हैं और वह दिन शीघ्र ही आने वाला है, जब यूरोप की तरह भारतवर्ष में भी उनके ग्रन्थ लोकप्रिय बनेंगे और उन्हें अक्षय कीर्ति प्राप्त होगी।

कीर्तियेंस्य स जीवात ।

कुण्डेश्वर (टीकमगढ़)

— बनारसीदास चतुर्वेदी



पुनर्जन्म

सन् १९१४ के जाड़ों में घुड़सवार सेना का बंरन फ्रेडरिक माइकेल नामक अफसर लड़ाई में काम आ गया था। उसके घर पर अलमारी में एक बन्द लिफाफा मिला था जिसमें निम्नलिखित कहानी थी। मृतक के सम्बन्धियों ने शीर्षक के विचार से और सरसरी निगाह से कहानी पढ़ लेने के बाद यह निष्कर्ष निकाला था कि यह कहानी लिखने का प्रथम प्रयास है। उन लोगों ने कहानी को मेरे पास भेज दिया है और मुझे इस बात का अधिकार दे दिया है कि यदि मैं ठीक समझूँ तो उसे प्रकाशित करा दूँ। मेरा विश्वास है कि यह कहानी नहीं है, यह है आपबीती। इसीलिए मैं इसको ज्यों का त्यों, बिना किसी हेर-फेर के, छाप रहा हूँ। केवल लेखक के व्यक्तित्व को छिपा दिया गया है।



✧ पुनर्जन्म

आज मुझे एकाएक विचार आया है कि मैं उस विचित्र रात्रि के तमाम अनुभवों को लिख डालूँ जिससे मैं स्वयं उस घटना-क्रम के सम्पूर्ण वृत्त पर नज़र डाल सकूँ। जब से यह विचार आया है तब से इन अनुभूतियों को लिख डालने की एक अनिर्वचनीय ललक मेरे ऊपर सवार हो गई है, यद्यपि, मुझे सन्देह है कि इन घटनाओं के वैचित्र्य को यथोचित रूप से व्यक्त कर भी सकूँगा या नहीं। कलात्मक प्रतिभा मुझमें नहीं है और न मुझे लिखने का अभ्यास ही है। लेखन का मेरा प्रयास केवल स्कूल में लिखे दो-तीन छोटे-छोटे हास्य-निबंधों तक ही सीमित है। मुझे ज्ञात नहीं कि इन मामलों के लिए कोई विशेष शैली हो सकती है या नहीं।

—मैं इतना भी नहीं जानता कि लेखक बनने की आकांक्षा रखने वाले व्यक्ति को बाह्य घटना-क्रम और मन पर उसके प्रतिबिम्ब के सुसम्बद्ध वर्णन का सर्वोत्तम ढंग सिखाया जा सकता है या नहीं। मुझे तो इसमें भी सन्देह है कि मैं अपने भावों को समुचित ढंग से प्रकट कर सकूंगा, शब्दों को यथापूर्ण अर्थों में प्रयोग कर सकूंगा और इस प्रकार वह संतुलन स्थापित कर सकूंगा जिसे मैं सफल उपन्यासकार की शैली के लिए अत्यन्त आवश्यक समझता हूँ। जो भी हो, इस वृत्तान्त को मैं केवल अपने लिए ही लिख रहा हूँ और मुझे इस बात की चिन्ता नहीं है कि जिस चीज़ को समझने मैं मुझे स्वयं कठिनाई हो रही है, उसे किसी दूसरे को समझाना पड़ेगा। मेरा ध्येय तो मानो केवल हिसाब साफ करने भर का है, उन घटनाओं का जिनमें मुझे अत्यधिक दिलचस्पी थी और जिन्होंने मुझे हिला दिया था। इन घटनाओं को प्रत्यक्ष देखने के लिए ही मैं लिखना चाहता हूँ। इनके बारे में मैंने अपने मित्रों को कभी नहीं बताया है। मुझे हिचक थी कुछ इसलिए कि मुझे विश्वास नहीं था कि मैं उन्हें पूरी तरह से इन घटनाओं का तत्त्व समझा सकूंगा और अंशतः इसलिए भी कि मुझे स्वयं अपने आप पर लज्जा आती थी कि एक मामूली-सी घटना से मैं कितना प्रभावित हो गया हूँ। यह सारी चीज़ एक साधारण से अनुभव के अतिरिक्त कुछ भी नहीं थीं। फिर भी, इन शब्दों को लिखते समय भी मुझे इस बात का अनुभव हो रहा है किसी नौसिखिए लेखक के लिए ठीक-ठीक शब्द चुन लेना कितना कठिन हो जाता है।

मैं जानता हूँ कि एक शब्द के प्रयोग में भी अनर्थ की कितनी गुंजायश है। हाँ, जब मैं कहता हूँ कि यह घटना 'मामूली' सी थी तो मैं सापेक्षतः यह बात कह रहा हूँ। मेरा मतलब केवल यह है कि बड़े-बड़े नाटकीय घटना-चक्रों के मुकाबले, जिनमें अनेक राष्ट्रों तथा अनेकानेक भाग्यों का निपटारा हो जाता है, यह घटना नाचीज़ ही है। साथ ही इस घटना की 'तुच्छता' में उसके काल का भाव भी है। जिन अनुभवों को मैं लिपिबद्ध करने जा रहा हूँ, उनमें केवल छैं घंटे लगे थे। फिर भी, साधारण दृष्टिकोण से ये अनुभव चाहे जितने मामूली हों, तुच्छ हों, उपेक्षणीय हों, मेरे अपने लिए तो वे क्षण इतने महत्वपूर्ण हैं कि मेरे मन में अब भी उनकी अग्नि प्रज्ज्वलित है और मैं सारी कथा कह देने के लिए भड़भड़ा रहा हूँ। दिन-प्रतिदिन, क्षण-प्रतिक्षण मेरे मष्तिक में सारी घटना घूमा करती है, मानो वही मेरे जीवन की धुरी बन गई है। जो कुछ भी मैं कहता हूँ, या करता हूँ वह सब अनजाने ही इस घटना के द्वारा निर्णीत होता है। अन्य कोई विचार मेरे मन में आता ही नहीं। सदा ही मैं इस आकस्मिक घटना-क्रम को दुहराया करता हूँ ताकि मैं इसे भूल न जाऊँ। इस वृत्तांत लिखने का मेरा एक मात्र ध्येय यह है कि मैं उसे पूरी तौर से याद रख सकूँ, उसे मूर्त रूप में देख सकूँ, फिर से इस अनुभूति-क्रम का बौद्धिक और भावगत, दोनों प्रकार का आनन्द एक साथ उठा सकूँ।

वास्तव में यह मुझे अब मालूम हुआ है, लेकिन दस मिनट पहले जब मैंने लेखनी उठाई थी, तब यह बात मेरे दिमाग में नहीं आई थी। जब मैंने लिखा था कि यह विवरण लिखकर मैं एक प्रकार से अपनी स्मृति की कर्ज-अदायगी कर दूंगा, तो मैं गलती पर था। असल बात यह है कि मैं उस घटना का अधिक सजीव चित्र खींचना चाहता हूँ क्योंकि उस समय जो कुछ हुआ, बड़ी तेजी से घटित हुआ था। हाँ मैं अधिक सजीव चित्र खींचना चाहता हूँ ताकि वेक्षण अपने वास्तविक रूप में सदा मेरे सामने रहें। मुझे इस बात का ज़रा भी डर नहीं है कि मैं उस शाम के, और उसके बाद उस अजीब रात के, अनुभवों को भूल जाऊंगा। इन क्षणों को याद रखने के लिए मुझे किसी भी स्मृति-चिन्ह की आवश्यकता नहीं है, उस घटना-काल पर पुनः यात्रा करने के लिए मुझे मील के पत्थरों की आवश्यकता नहीं। सोते-सोते चलने वाले व्यक्ति की भाँति मैं सही और सधे कदमों से उस दिन या उस रात की स्मृतियों के पथ पर चल सकता हूँ। इनकी स्मृति मेरे हृदय में उतर चुकी है।

मस्तिष्क में तो गलती भी हो सकती है। वैसे मैं इसी कागज़ पर मधुऋतु की हरीतिमा की पत्ती-पत्ती का चित्र बना सकता हूँ, और अब पतझड़ में भी अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा परागयुक्त पुष्पों की भीनी सुगन्ध का अनुभव कर सकता हूँ। इसलिए यदि मैं इस वृत्तांत को लिख रहा हूँ और इन क्षणों को याद कर रहा हूँ, तो विस्मृति के भय से नहीं,

बल्कि उस स्मृति का पूर्ण आनन्द उठाने के लिए । इस घटना क्रम का वर्णन करते समय मुझे अपने ऊपर कड़ा नियंत्रण रखना पड़ेगा, क्योंकि जब भी मैं इन क्षणों को याद करता हूँ तभी मुझ पर एक प्रकार का नशा-सा सवार हो जाता है, भाव-विभोर हो जाता हूँ और स्मृतियों का प्रवाह टूट जाता है । सब कुछ असम्बद्ध हो जाता है । उस दिन की स्मृति अब भी इतनी ताज़ी और तीव्र है, ८ जून सन् १९१३ के दिन की, जब मैंने एक गाड़ी किराये पर की.....

मुझे अपनी लेखनी फिर एक बार रोकनी पड़ रही है, क्योंकि मुझे उपयुक्त शब्द नहीं मिल रहे हैं, ठीक-ठीक अर्थ नहीं मिल रहा है । जब इस घटना को ही लिखने में कठिनाई हो रही है, तो मुझे ख्याल आता है कि जीवन की अजश्र सरिता का चित्र खींचना कितना कठिन होगा ! मैं लिख रहा हूँ, “मैंने” यह किया, “मैंने” ८ जून १९१३ के दिन एक गाड़ी किराये पर ली, लेकिन इस सर्वनाम में अस्पष्टता है, क्योंकि मैं अब ८ जून की शाम वाला वही “मैं” नहीं रह गया हूँ । यद्यपि इस बात को केवल चार महीने हुए हैं, और मैं अब भी उसी “मैं” वाले मकान में रहता हूँ, उसी मेज़ पर बैठकर काम करता हूँ, उसी क्लम से लिखता हूँ, तो भी कितना भिन्न हो गया हूँ । खासतौर पर उन अनुभवों के कारण जिन्हें आज मैं लिपिबद्ध करने जा रहा हूँ । उस दिन के व्यक्ति को आज मैं बाहर से देख सकता हूँ—जैसे कोई दूसरा आदमी देखे । उसके बारे में भी अब मैं उसी प्रकार

लिख सकता हूँ, जिस प्रकार अपने किसी मित्र या सम्बन्धी के बारे में, जो घनिष्ट तो हो, किन्तु जिसका व्यक्तित्व मुझसे सर्वथा भिन्न हो, जिसकी प्रशंसा कर सकता हूँ, निन्दा कर सकता हूँ, बिना किसी अपनेपन के ।

तब मैं अपने अंतर या वाह्य रूप में “उसके” वर्ग के दूसरे लोगों से भिन्न न था, उन लोगों से जो स्वभावतः, बिना किसी विशेष अभिमान के, अपने को ‘भद्र समाज’ का सदस्य समझते हैं । तब मैं पूरे पैंतीस साल का था । माता-पिता मेरे वयस्क होते ही चल बसे थे । वे मेरे लिए इतना धन छोड़ गये थे कि मुझे कमाने की चिन्ता करने की कोई जरूरत न थी । एक प्रकार से उनकी मृत्यु से मुझे एक बड़ी भारी चिन्ता से छुटकारा मिल गया था , जो मुझे अक्सर सताया करती थी । मैं विश्वविद्यालय की शिक्षा समाप्त कर चुका था, और जीविकोपार्जन का प्रश्न सामने आ चुका था । अपने परिवार के सम्बन्धों के कारण और शान्तिपूर्ण, सुरक्षित तथा चिंतनशील जीवन की ओर रुचि होने के कारण, किसी ऊँचे सरकारी पद पर लग जाने की काफी सम्भावना थी । लेकिन अब मैं अपने माता-पिता की सम्पत्ति का एकमात्र अधिकारी था । मैंने देखा कि यह सम्पत्ति मेरे स्वच्छन्द जीवन के लिए काफी है । प्रारम्भ से ही मैं कभी भी अधिक महत्वाकांक्षी नहीं रहा । इसलिए मैंने कुछ वर्ष ‘जीवन के अनुभव’ लेने में बिताने का निश्चय किया । यह भी सोचा था कि यदि इसी बीच कोई विशेष आकर्षक काम सामने आ जायगा तो कर

लूंगा। अंततोगत्वा मैं इस प्रतीक्षा के जीवन से ही संतुष्ट बना रहा, क्योंकि मेरी आकांक्षाएँ अधिक नहीं थीं। मामूली सी इच्छाएँ थीं जो आसानी से पूरी हो जाती थीं। जो दुष्प्राप्य था उसे पाने की मेरी स्वाहिश भी न होती थी। सरल और आनन्दपूर्ण जीवन बिताने के लिए वियना में जितनी सुविधाएँ प्राप्त हो जाती हैं, उतनी और किसी राजधानी में नहीं। यहाँ के घूमने-फिरने का आनन्द, सौंदर्य, कला, लक्ष्य-हीन चिंतन आदि सब मिलकर स्वयं में परिपूर्ण एक ऐसा जीवन बन जाता है, जिसके प्रागे अन्य किसी लक्ष्य की अभिलाषा नहीं रहती। मैं भी इन चीजों में लिप्त हो गया और जीवन की अधिक कठोर वास्तविकता को भूल गया।

एक सुन्दर, धनी, संतुष्ट और परिवार से घिरे तरुण के लिए जितने भी मनो-विनोद हो सकते हैं, उन सबका आनन्द मैं उठाने लगा। खेलकूद, यात्रा, मामूली जुआ आदि की हानि-रहित उत्तेजना का आनन्द। जल्दी ही इस जीवन-चर्या में कला-कृतियों के प्रति रुचि भी शामिल हो गई। तरह-तरह के दुष्प्राप्य रत्न भी इकट्ठे किए। यह इसलिए नहीं कि मैं उन्हें बहुत पसन्द करता था, बल्कि इसलिए कि इस परिमित क्षेत्र में पारखी बन जाना बड़ा आसान था। अपने कमरे की दीवारें मैंने इटली के पुरानी कामदार शिल्प-कृतियों और 'कैनालैटो' शैली के चित्रों से सजा ली थीं, जो कभी तो व्यापारियों से प्राप्त हो जाती थीं और कभी नीलामों से।

इन नीलामों में मैं खुलकर बोली बोलने के कोमल आवेश का आनन्द लेता था ।

अच्छे संगीत की महफ़िलों में भी मैंने नियम से जाना प्रारम्भ कर दिया था । उच्च कोटि के चित्रकारों की चित्र-शालाओं की भी सैर करने लगा । नारी-क्षेत्र में पर्याप्त सफलता के योग से अनुभवों का वृत्त और भी सुडौल हो गया । संग्रहकर्त्ता को जो एक गूढ़ आत्मप्रेरणा होती है (जिससे व्यक्ति के निठल्लेपन का पता चल जाता है) उससे प्रेरित होकर मैंने कितने ही स्मरणीय क्षण इस आनन्द का उपयोग करने में बिताये और धीरे-धीरे मुझे इस क्षेत्र में भी सच्चा पारखी समझा जाने लगा । कुल मिला कर, मेरा समय अच्छी तरह बीतता था और मेरा जीवन भरा-पूरा मालूम पड़ता था । इन दिलचस्प और उद्वेगरहित दिनों का सरल और सुहावना वातावरण मुझे अधिकाधिक प्रिय होता जा रहा था । नयी इच्छाएँ मेरे मन में बहुत कम आती थीं क्योंकि इस शांतिपूर्ण परिवेश में मामूली चीज़ों से ही मुझे काफी आनन्द मिल जाता था । किसी सुन्दर नेकटार्ड या अच्छी पुस्तक की खरीद, मोटर की सैर या किनी सुन्दरी से दो घड़ी की बातचीत में ही मुझे समुचित आनन्द मिल जाता था और मैं अपने जीवन को सुखी मान लेता था । मुझे विशेष प्रसन्नता तो इस बात की थी कि मेरा जीवन किसी अँग्रेज़ दर्जी के सधे हुए हाथों से कटे कोट की भाँति अत्यन्त सादा था और उसमें कोई भी भड़कीली चीज़ नहीं थी । मैं समझता हूँ कि मेरे दोस्त भी

मुझे खूब पसन्द करते थे और मुझसे मिलकर उन्हें प्रसन्नता होती थी। मेरे अधिकतर परिचित व्यक्ति मुझे भाग्यशाली ही समझते थे।

मुझ सचमुच याद नहीं आता कि प्रारम्भिक दिनों का यह आदमी, जिसका मैं इतिहास लिख रहा हूँ, स्वयं भी अपने को सौभाग्यशाली समझता था या नहीं। कारण यह है कि इन निर्णायक अनुभवों के बाद अब मैं प्रत्येक भावना से अपेक्षा करता हूँ कि वह अधिक गहरी और अधिक सार्थक हो। इसलिए उन पिछले दिनों की भावनाओं का पूरा-पूरा अन्दाज़ा लगाना असम्भव-सा है। किन्तु यह बात मैं निश्चय-पूर्वक कह सकता हूँ कि उन दिनों मैं दुखी नहीं था। मेरी सभी इच्छाओं की पूर्ति हो जाती थी; जीवन से जो भी माँगता था, मिल जाता था। लेकिन इसी बात से कि मेरी तमाम इच्छाएँ पूरी हो जाती थीं और जो भी मैं चाहता था सब मिल जाता था, तथा भाग्य से कोई याचना करने की आवश्यकता नहीं होती थी, (इसके अनिवार्य फलस्वरूप) मेरे मन में एक भावना पैदा हो गई कि ज़िन्दगी बड़ी ढीली-ढाली चीज़ है।

मेरे मन में अचेतन या अर्द्ध-प्रत्यक्ष रूप से इच्छाएँ काम कर रही थीं। वे वास्तविक इच्छाएँ न थी, बल्कि नई-नई चाहनाओं की इच्छा थी। आकांक्षा थी अधिक दुर्दम, अधिक कठोर और अधिक कठिनाई से तृप्त होने वाली इच्छाओं का

उदय मेरे मन में हो । जीवन में अधिक 'पूर्णता' से रहने की इच्छा थी' कदाचित्त मैं अधिक संघर्ष भी चाहता था । रहने का ढंग ही ऐसा बन गया था कि मेरे जीवन-पथ में कोई प्रतिरोध नहीं बचा था और यही प्रतिरोध- रहित सहज-लब्धि अन्दर ही अन्दर मेरे जीवन-तत्त्व को भस्म कर रही थी । मैं देखता था कि धीरे-धीरे मेरे मन में इच्छाओं का अभाव होता जा रहा है, और उनकी प्रबलता में भी कमी आ रही है । मेरे मन में एक प्रकार का अवरोध आता जा रहा है और मानो (इसे कैसे व्यक्त करूं ?) मैं एक प्रकार की आत्मिक नपुंसकता का, जीवन को शक्ति के सम्पूर्ण वेग से ग्रहण करने की अक्षमता का शिकार होता जा रहा हूँ । अब मैं कुछ ऐसे गक्षण गिनता हूँ, जिनसे मुझे इस दुर्बलता का प्रथम बार आभास मिला । बहुधा थियेटर में किसी नई कृति को जाकर देखने की इच्छा न होती थी, जिन नई पुस्तकों की चर्चा लोगों में सुनता था उन्हें भँगा तो लेता था, लेकिन वे हप्तों बन्द पड़ी रहतीं थीं । पुस्तकों और रत्नों का मेरा संग्रह चल रहा था लेकिन मैं अब उनकी तलाश में नए नए स्थानों की खोज नहीं करता था । और यदि कोई ऐसी चीज़ हाथ लग-जाती थी जिसकी मैं बहुत तलाश में होता तो कोई विशेष प्रसन्नता भी न होती थी ।

लेकिन प्रथम बार अपने मन की कमजोरी का ज्ञान मुझे कब हुआ यह भलीभाँति याद है । गर्मियों के दिन थे । आलस्यवश तथा किसी नई सम्भावना से आकर्षित न होने के

कारण मैं वियना में ही रहा था, कहीं बाहर नहीं गया था । इन्हीं दिनों मुझे एक स्त्री का पत्र मिला जिसके साथ मैंने पिछले तीन वर्ष घनिष्टता पूर्वक बिताये थे और मैं ईमानदारी से यही समझता था कि मैं उससे प्रेम करता हूँ । वह पत्र बड़ा लम्बा और भावुकतापूर्ण था—चौदह पृष्ठों का था । उसने लिखा था कि हाल ही में उसकी जान-पहिचान एक आदमी से हो गई है और वही अब उसका सर्वस्व हो गया है । उसी के साथ वह अगले जाड़ों में चिर-बंधन में बँध जाना चाहती है, इसलिए मुझे उसके साथ सारे सम्बन्ध तोड़ देने होंगे । पिछले अनुभवों के लिए उसे कोई अफसोस नहीं था, उनकी स्मृति उसके लिए सदा सुखकर होगी, इस नए बंधन में भी मेरी स्मृति उसके साथ रहेगी, विगत जीवन के मधुर-तम क्षणों के रूप में । उसे आशा थी कि अचानक ही यह निश्चय कर लेने के लिए मैं उसे क्षमा कर दूँगा । इस प्रकार के विवरण से प्रारंभ करके उसने मुझसे प्रार्थना की थी कि मैं उससे घृणा न करने लगूँ और साथ ही इस सम्बन्ध-विच्छेद के कारण दुःखित न होऊँ, उसे रोकने की चेष्टा न करूँ और स्वयं भी अविचार का कोई काम न कर बैठूँ । तसल्ली का कोई और जरिया तलाश कर लेना ही मेरे लिए ठीक होगा । इस पत्र का उत्तर तुरन्त देना होगा क्योंकि जब तक उसे मेरा उत्तर नहीं मिल जायगा तब तक वह चिंताग्रस्त रहेगी । इसके बाद 'पुनश्च' कर्क के पेंसिल से लिखा था, 'कोई नासमझी, का काम न कर बैठना, सब कुछ समझ कर क्षमा कर देना ।

इस पत्र को जब मैंने प्रथम बार पढ़ा तो मुझे इस समा-
 चार पर अत्यन्त आश्चर्य हुआ । लेकिन जब मैंने उसे दुबारा
 पढ़ा तो मुझे अपने ऊपर शर्म आने लगी और ज्यों-ज्यों मैं
 उसका मतलब समझता गया, त्यों-त्यों यह शर्म एक निश्चित
 भय की भावना का रूप धारण करने लगी । मेरी प्रेयसी को
 मेरी ओर से जिन स्वाभाविक और आकुल भावों की आशंका
 थी और जिनसे उसने मुझे खबरदार किया था उनका आभास
 तक मुझे अपने अंदर नहीं मिला । उनकी छाया भी मेरे मन
 में नहीं थी । उसके पत्र से मुझे कोई वेदना नहीं हुई । उसके
 ऊपर मुझे क्रोध नहीं आया और न उसके या स्वयं अपने
 प्रति हिंसा का कोई भाव मेरे मन में एक क्षण को भी आया ।
 यह उपेक्षा-भाव इतना विचित्र था कि मैं स्वयं उससे भयभीत
 हो उठा । जिस स्त्री से वर्षों तक मेरी घनिष्टता रही, जिसके
 कोमल उष्ण शरीर का मैंने अनेक बार आलिंगन किया,
 रात्रिकालीन सहवास में जिसकी श्वास का मधुर स्वर सुनने
 में मुझे सुख मिलता था, उससे सदा के लिए मेरा विछोह हो
 रहा था । किन्तु इस समाचार के कारण मेरे मन में तनिक भी
 व्याकुलता नहीं आई । अपनी सहज-बुद्धि के कारण एक पुरुष
 से जिस चीज़ की साधारणतया उसने आशा की थी, उसका
 मेरे मनोभावों में चिन्ह तक नहीं था । इसी बात से प्रथम
 बार मुझे अपने अंतस् के अवरोधक्रम का पूरा-पूरा ज्ञान हुआ ।
 या यों कहिए कि मैं नदी की सतह पर बिना किसी पतवार
 के, बिना किसी प्रतिरोध के मुर्दे की भाँति बहता चला जा

रहा था । मैं जानता कि कोई एक लाश कोई बेजानदार चीज इस ठण्डेपन में थी । अभी वह निर्जीव शरीर पंचतत्वों में विलीन नहीं हुआ था, उसमें से दुर्गन्ध नहीं आने लगी थी । लेकिन उसमें बुझते जीवन की निराशापूर्ण उदासीनता थी, शरीरांत होने के पूर्व के क्षण की, प्रत्यक्ष अनुवर्ती क्षय की उदासीनता थी ।

तब से मैं अपनी भावना के इस विचित्र अवरोध पर वैसे ही नज़र रखने लगा जैसे कोई रोगी अपने बढ़ते हुए रोग को देखता है । इसके थोड़े दिन बाद ही मेरे एक पुरुष मित्र की मृत्यु हो गई । मेरे बचपन का एक साथी सदा के लिए मेरे जीवन में से निकल गया । उसकी कब्र के पास बैठकर मैंने अपने हृदय को टटोला कि क्या वास्तव में मुझे उसकी मृत्यु से दुख हुआ है ? क्या उसकी मृत्यु से मेरी कोई निजी क्षति हुई है ? मेरे मन में ऐसा कोई भाव नहीं था । ऐसा प्रतीत होता था मानों मैं काँच का बना होऊँ, जिसके आर-पार सब कुछ, बिना उसका अंग बने देखा जा सकता है । ऐसे अवसरों पर महसूस करने का मैं चाहे जितना प्रयास करूँ अपने को यह समझाने के लिए कि मेरे अन्दर ऐसे भाव होने चाहिए, मैं अच्छे से अच्छे तर्क उपस्थित करूँ, लेकिन मेरे अंतस्तल से कोई उत्तर नहीं मिलता था । आदमियों से विछोह हो जाता था, स्त्रियाँ मेरे जीवन में आती थीं और चली जाती थीं, और मेरे ऊपर इसका केवल उतना ही प्रभाव होता था जितना कि कमरे में सुरक्षित बैठे हुए

आदमी के ऊपर खिड़की के बाहर पड़ने वाली मेह की बूंदों का होता है। मेरे और जीवन की वास्तविकताओं के बीच एक पारदर्शी दीवार खड़ी हो गई थी, जिसे ढा देना मेरे बूते के बाहर था।

इस स्पष्ट आभास का भी मेरे ऊपर कोई चिन्ताजनक प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि जैसा कि मैं बता चुका हूँ, मैं अपने निकट की चीजों के प्रति भी उदासीन था। शोक की व्यथा भी मुझे महसूस नहीं होती थी। जिस प्रकार यौन-नपुंसकता का पता सहवास के खास मौके पर ही चलता है, और साथी-सगिनों को उसका पता नहीं चलता, उसी प्रकार मेरी आत्मिक शून्यता का आभास तक मेरे आत्मीय जनों को नहीं मिला। सामाजिक जीवन में मेरे कृत्रिम उल्लास को देखकर मेरे मिलने-जुलने वालों को बहुधा आश्चर्य होता था। अपनी आन्तरिक उदासीनता को ढक देने के लिए समाज में मैं जिस भावुक अनुराग का दिखावा करता था, उसे देखकर लोगों को अचरज होता था। ऊपर से तो सब लोग यही देख पाते थे कि मेरा जीवन सरल, निष्कण्टक और सुखी है। इसी प्रकार हफ्ते और महीने चुपचाप खिसकते चले गये और धीरे-धीरे बढ़कर उन्हें वर्षों की संज्ञा मिली।

एक दिन सुबह शीशे में देखने पर मुझे पता चला कि मेरी कनपटी के बाल पक रहे हैं। मुझे मालूम हुआ कि मेरा यौवन उड़ जाने की तैयारी कर रहा है। किन्तु जिसे लोग

“यौवन” कहते हैं वह तो कभी का बीत चुका था । इस यौवन-विछोह से मुझे कोई विशेष दुख नहीं हुआ, क्योंकि मैंने कभी उसका मूल्य बढ़ा कर आँकने की कोशिश भी नहीं की थी । मुझे अपने आप में भी कोई दिलचस्पी नहीं रहो थी ।

इस उदासीनता के कारण मेरे दिन अधिकाधिक एकरस होते गए, यद्यपि बाह्यरूप से उनकी चर्या और घटनाओं में भिन्नता होती थी । वे एक शृंखला में बँधे, बिना किसी भिन्नता के एक दूसरे का अनुसरण करते गए, किसी वृक्ष की पत्तियों की भाँति निकलते और मुरझाते गये । न उस दिन के बारे में ही (जिसका मैं वृत्तांत लिख रहा हूँ) कोई विशेष बात नज़र आती थी । यह भी किसी अन्य दिनों के सदृश ही लगता । ।

८ जून १९१३ को प्रातःकाल मैं ज़रा देर से सोकर उठा था । अपने स्कूल के दिनों की स्मृति स्वरूप रविवार के दिन ज़रा देर से उठने की मेरी आदत थी । स्नान करने के बाद मैंने अखबारों पर एक सरसरी नज़र डाली । दिन इतना सुहावना था कि मैं बाहर घूमने का लालच न रोक सका । सदा की भाँति मैं ग्रेबन स्ट्रीट पर निकल पड़ा । रास्ते में मिलने वाले परिचित जनों से यथाविधि प्रणाम और जहाँ-तहाँ संक्षिप्त बातचीत करता जा रहा था । दोपहर के भोजन के लिए मैं अपने एक मित्र के घर चला गया । तीसरे पहर मुझे काम न था । अक्सर रविवार को तीसरे पहर का

प्रोग्राम मैं पहले से नहीं बाँधता था, समय आने पर जो तबियत हो, वही करता था। जब मैं अपने मित्र के घर से बिदा हुआ तो हलकी धूप के उजाले में सारा नगर बड़ा सुहावना लग रहा था। प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न दिखाई देता था। लोग सड़क के रविवासरीय वातावरण का आनन्द ले रहे थे। मुझे खुद बहुत सी छोटी-छोटी चीजों ने मुग्ध कर लिया था, खास तौर पर पेड़ों की हरियाली और कोलतार की सड़क के रंग के वैषम्य ने। यद्यपि मैं इस सड़क से लग-भग प्रतिदिन ही गुजरता था फिर भी आज की भीड़भाड़ से मुझे आश्चर्य ही हो रहा था। वृक्षों और लताओं की हरियाली और प्रकृति की कूँची के खेल देखने के लिए मेरे नेत्र और भी लालायित हो उठे। मेरी इच्छा प्रेटर जाने की हुई, जहाँ वसंत के अंतिम और ग्रीष्म के प्रारम्भिक इन दिनों में गाड़ियों के कोलाहल से पूर्ण सड़क के दोनों ओर कतार में लगे वृक्ष, हरे रंग की वर्दी पहने दीर्घकाय सैनिक की भाँति खड़े दिखाई देते हैं, और रंगबिरंगे कपड़े पहने घूमने वाले लोगों को शांत भाव से अपने सफेद फूलों का निरन्तर दान करते रहते हैं। इन मामूली इच्छाओं और भावनाओं के आगे आत्मसमर्पण कर देने का आदी होने के कारण, मैंने तुरन्त एक बगधी बुलाई और कोचवान से प्रेटर चलने को कहा।

उसने विनम्रता से पूछा, “घुड़-दौड़ के मैदान को चलूँ, हुजूर ?”

तब मुझे खयाल आया कि आज तो सचमुच घुड़दौड़ का दिन है। सारा वियना वहाँ उमड़ पड़ा होगा। मैं सोच रहा था, “अजीब हालत है, कुछ साल पहले तो मेरे लिए यह भूल जाना असम्भव होता कि आज घुड़-दौड़ का दिन है।”

इस भुलक्कड़पन से मुझे उस उदासीनता का पता चला जिससे मैं पीड़ित था, मानों किसी रोग का पीड़ित अंग हिल गया हो।

हम लोग पहुँचे तो सड़क लगभग खाली हो चुकी थी, रेस कुछ देर पहले प्रारम्भ हो गई होगी। गाड़ियों की भीड़ की जगह अब कहीं-कहीं सरपट दौड़ती हुई एक दो बगियाँ नज़र आ रही थीं।

मेरे कोचवान ने पीछे मुड़ कर पूछा, “मैं भी गाड़ी तेज़ कर दूँ?” लेकिन मैंने उससे कह दिया कि मुझे कोई जल्दी नहीं, धीरे-धीरे ही चलाये। मैंने बहुत-सी घुड़दौड़ देखी थीं, इसलिए मुझे जल्दी या देर में पहुँचने की चिन्ता नहीं थी। मन में आलस्य था, इस हालत में बग़ी के धीमे झकोरे अच्छे लग रहे थे, लगता था मानों मैं पानी के जहाज़ में झूल रहा होऊँ। धीरे-धीरे गाड़ी चलने से चेस्टनट के सुन्दर फूलों को अच्छी तरह देख सकता था, जिनकी पंखुड़ियाँ हवा में चक्कर काटती हुई यत्र-तत्र गिर रही थीं। सड़क इन बिछी हुई पंखुड़ियों के कारण सफ़ेद नज़र आती थी। मधुऋतु के इस वातावरण में आँखें मूंद कर साँस लेना

मुझे बड़ा भला लग रहा था । फिर गंतव्य स्थान पर पहुँचने की जल्दी क्यों की जाय ? इसीलिए जब मेरी बगधी घुड़दौड़ के मैदान के फ़ाटक पर रुकी तो मुझे कुछ बुरा-सा लगा । तबियत हो रही थी कि मैं फिर लौट पड़ूँ और सुहावनी संध्या का आनन्द एक घण्टे तक जी भर कर और उठा लूँ । लेकिन अब तो गंतव्य आ गया था । मैदान में से शोर सुनाई पड़ने लगा मानों उसके अंदर घिरा हुआ समुद्र लहरा रहा हो । जिस जनसमूह से यह गर्जन आ रहा था, अभी तक वह मुझे दिखाई न पड़ा था । मुझे याद आया कि ठीक इसी तरह आस्ट्रेण्ड नगर के निचले हिस्से से ऊपर की ओर जाने वाली गलियों में चलने पर, किनारे से टकराती हुई लहरों वाले विशाल सागर का दर्शन होने से पहले ही हवा में खारा-पन मालूम पड़ने लगता है, और उसका गम्भीर नाद सुनाई पड़ने लगता है ।

इस शोरगुल से पता चला कि दौड़ शुरू हो गई है । लेकिन मेरे और इस दौड़ के बीच चौड़ी खाई की भाँति एक विशाल रंग-बिरंगा जनसमूह स्थित था । दौड़ की प्रत्येक स्थिति दर्शकों के रंग बदलते हुए चेहरों पर पढ़ी जा सकती थी । यह दौड़ अब काफी आगे बढ़ चुकी होगी । अब घोड़े एक साथ झुंड में दौड़ने के बजाय एक दूसरे से जीतने की बाज़ी लगा रहे होंगे । दर्शकगण एक न एक घोड़े का नाम लेकर जोश में चिल्ला रहे थे—सबकी आँखें एक ऐसी चीज़ पर जमी हुई थीं जिसे मैं नहीं देख पा रहा था । सबकी

मुँह की दिशा से मैं अनुमान लगा रहा था कि अब मैदान का कौन-सा भाग उनके आकर्षण का केन्द्र है। हजारों कण्ठों से निकला सम्मिलित नाद प्रतिपल अधिक तेज होकर नीरव आकाश तक गूँज रहा था।

कुछ लोगों के चेहरों को मैंने पास से अच्छी तरह देखा, वे सभी उद्विग्न और भड़भड़ाए हुए थे, उनके एकटक नेत्र चमक रहे थे, ओंठ परस्पर दबे हुए, ठोड़ी बाहर निकली हुई और नथुने फड़क रहे थे। मेरे जैसे निर्लिप्त दर्शक के लिए उनका व्यवहार एक साथ ही हास्यास्पद और भयावह था। पास की एक बेंच पर साफ सुथरे कपड़े पहने एक आदमी खड़ा था। सूरत शकल से वह भला आदमी मालूम होता था लेकिन इस समय शायद उस पर भूत सवार हो गया था। वह हवा में अपनी छड़ी चला रहा था, जैसे घोड़े में चाबुक उड़ा रहा हो और उसका शरीर उछल-उछल कर सरपट दौड़ते हुए घोड़े पर सवार आदमी की नक़ल कर रहा था। उसकी ऐड़ियाँ रह रह कर बेंच पर ताल दे रही थीं मानों वे रकाबों में उछल रही हों। अपने दाहिने हाथ की छड़ी से वह बराबर शून्य में प्रहार कर रहा था, बाएँ हाथ में बाज़ी लगाने का पर्चा लिए था। मुझे हर तरफ़ ये सफेद पर्चे ही नज़र आ रहे थे। वे इस गरजती हुई बाढ़ के उफनते हुए फेन के समान लग रहे थे।

अब लोगों के विभिन्न दल गरज कर घोड़ों के नाम युद्ध-नाद की भाँति घोषित करने लगे। यदि उनका जोश इस

घोष में व्यक्त न हो गया होता तो शायद वे पागल हो जाते । इससे मालूम होता है कि अब घोड़े मोड़ पर आ गए होंगे और पूरी ताकत से दौड़ रहे होंगे ।

इस तुमुलनाद के बीच मैं ठीक उसी भाँति अचल खड़ा था जिस भाँति चट्टान अपने को विध्वंस करने वालों के बीच खड़ी रहती है । उस समय के अपने भावों का सही विवरण देना मेरे लिए कठिन है । निस्सन्देह मेरा प्रमुख भाव यह था कि उन लोगों के हास्यास्पद उन्माद से मैं निश्चय ही चकित हो गया था । वे लोग जिस भद्दे ढंग का प्रदर्शन कर रहे थे, उससे मुझे घृणा हो रही थी । लेकिन साथ ही अनिच्छापूर्वक मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि एक और भाव मेरे मन में जाग उठा था—मुझे इन लोगों के जोश के प्रति, इनके जबरदस्त जीवन के प्रति ईर्ष्या हो रही थी । मैं सोच रहा था कि आखिर कौन-सी चीज़ मुझे इस प्रकार उत्तेजित कर सकती है ? ऐसी कौन-सी वस्तु है जो मुझ में आवेग पैदा कर दे, जिससे मेरा शरीर जलने लगे, जिससे इन लोगों की भाँति मेरे भी मुँह से अनायास चीख निकलने लगे ? कोई भी अतुल धनराशि मेरे ध्यान में नहीं आ रही थी जो मेरे अन्दर इतनी हलचल पैदा कर सकती । न कोई सुन्दर रमणी ही मेरे ध्यान में आ रही थी जो मुझे इस प्रकार मुग्ध कर ले, मेरे मन में इतनी गति पैदा कर दे । ऐसी कोई भी चीज़ मुझे संसार में नज़र न आ रही थी जो मेरे मृत भावों को पुनः जीवित कर सके । अगर मेरे माथे पर पिस्तौल

रख दी जाती तो उसका घोड़ा दबने के क्षण में भी मेरे हृदय में उतनी धुकधुकी पैदा न हो सकती थी, जितनी कि इन लाखों व्यक्तियों के हृदय में मुट्ठी भर रूपों के लिए हो रही थी ।

लेकिन अब कोई घोड़ा जीतने वाला ही होगा क्योंकि हज़ारों आदमी केवल एक ही नाम लेकर चिल्लाने लगे थे । उनकी आवाज़ों ने घोर गर्जन का रूप ले लिया था । तभी बेंड बजने लगा, वह सम्मिलित नाद समाप्त हो गया, भीड़ तितर-बितर होने लगी । दौड़ खत्म हो चुकी थी । एक बाज़ी खेली जा चुकी थी । लोगों का जोश ठंडा पड़ गया, तनाव की स्थिति समाप्त हो गई और वे फिर से खिल उठे । एक क्षण पूर्व का सामूहिक उन्माद अब हँसते-बोलते, चलते-फिरते व्यक्तियों के दिलों में बंट गया । उन्मत्त व्यग्रता के नकली चेहरे की जगह अब लोगों के मुँह पर सामान्य शांति-भाव छा गया । दौड़ के जोश के कारण लोगों में जो सामूहिक ऐक्य स्थापित हो गया था वह समाज की भिन्न-भिन्न मण्डलियों में बिखर गया ।

मुझे बहुत से जान-पहचान के लोग दिखाई दिए और परस्पर अभ्यर्थना हुई, लेकिन यहाँ पर अधिकतर लोग मेरे लिए और एक-दूसरे के लिए अपरिचित थे । एक-दूसरे के प्रति उनका व्यवहार शिष्ट था किन्तु उसमें अपनापन नहीं था । स्त्रियाँ एक-दूसरे के घरों का मूल्यांकन कर रही थीं,

पुरुष-स्त्रियों को घूर-घूर कर देख रहे थे । निठल्ले अभि-
जात वर्ग का प्रमुख मनोविनोद अर्थात् सौजन्यपूर्ण जिज्ञासा,
फिर से प्रारम्भ हो गया । लोग यह हिसाब लगाने लगे कि
कौन कितना चुस्त नज़र आ रहा है । कौन वहाँ उपस्थित है
और कौन नहीं, इसकी ओर भी उनका ध्यान गया । दौड़
का नशा अभी तुरन्त ही उतरा था, फिर भी यह जानना
कठिन था कि आज के सम्मिलन में कौन-सी चीज़ वास्तविक
थी, यह सामाजिक वार्तालाप या घुड़दौड़ ।

मैं इस भीड़-भाड़ में टहल रहा था । इस वातावरण में
साँस लेने में आनन्द आ रहा था क्योंकि यही मेरी भी रोज़-
मर्रा की जिन्दगी का वातावरण था । इस रंगविरंगी भीड़-
भाड़ में से चुम्ती की जो गंध आ रही थी उसका मैं आनन्द
लेने लगा । किन्तु इससे भी अधिक आनन्ददायक थी वह
हलकी-फुलकी हवा, जो वनों और मैदानों से आकर स्त्रियों के
मलमल के वस्त्रों को फहरा रही थी । मेरे कुछ परिचितजन
मुझसे बातचीत करना चाहते थे । अभिनेत्री डायना ने
अपनी जगह से मुझे पास आने का इशारा भी किया, लेकिन
मैंने कोई ध्यान नहीं दिया । मैं इन फैशनेबल लोगों से बात-
चीत नहीं करना चाहता था । उनके शीशे में अपनी शक्ल
देखने से मैं ऊब गया होता । मैं लोगों का उल्लास देखूँ, उनके
जीवन के दृश्य का अध्ययन करूँ, यही इस समय मेरी आकांक्षा
थी; किसी चीज़ में स्वयं भाग न लेने वाले व्यक्ति के लिए

तो दूसरों का जोश-खरोश ही सबसे बढ़िया मनोरंजन होता है ।

कुछ सुन्दर स्त्रियाँ मेरे पास से निकलीं । मैंने उनकी ओर पैनी नज़र से देखा, यद्यपि मेरा मन अविचलित था । मजा यह कि इस तरह घूरे जाने से उन्हें घबराहट तो हो रही थी पर साथ ही मेरा ध्यान आकर्षित कर लेने के कारण उन्हें प्रसन्नता भी थी । और असली बात तो यह है कि मेरे लिए उनमें कोई भी आकर्षण नहीं था । मैं केवल उनमें झूठी दिलचस्पी दिखाने में और उनकी वासना जागृत करने में ही संतुष्ट था क्योंकि उन बहुत-से आदमियों की तरह जिनकी वासनाएँ ठंडी पड़ चुकी हैं मुझे भी अपने खून में हलचल महसूस करने के बजाय दूसरों में बेचैनी और वासना पैदा करने में ही अधिक आनन्द आता था । इसी प्रकार इस मैदान में स्त्रियों को घूरता हुआ और बदले में उनकी दृष्टि का केन्द्र बनता हुआ मैं इधर-उधर घूम रहा था । लेकिन मेरे अंतस् में सब कुछ स्थिर था, कोई भावना नहीं थी, केवल इस खेल के कारण मन में एक हलकी सी गुदगुदी हो रही थी ।

किन्तु इस खेल से भी मैं जल्दी ही ऊब गया । घूम फिर कर बार-बार वे ही चेहरे दिखाई देते थे । उनकी आकृति और भंगिमाएँ देखते-देखते उक्ता गया । इसलिए एक कुर्सी खाली पाकर मैं बैठ गया । लेकिन फिर से भीड़ में एक

नयी हलचल पैदा हो गई। पास से गुज़रने वाले प्रत्येक व्यक्ति के चेहरे पर फिर से बेचैनी का भाव दिखाई देने लगा। ज़ाहिर था कि अगली दौड़ शुरू होने वाली है। लेकिन इससे तो मुझे कोई सरोकार न था। मैं बैठा-बैठा अपनी सिगरेट के धुँए के छल्ले नीलाकाश की ओर उड़ते और विलीन होते देख रहा था। यहाँ से उस अपूर्व अनुभव का प्रारम्भ होता है जिसका प्रभाव अब तक मेरे जीवन पर छाया हुआ है। मुझे ठीक समय मालूम है क्योंकि उसी वक्त मैंने घड़ी देखी थी। दोनों सुइयाँ बराबर थीं—इस समय ८ जून १९१३ के तीसरे पहर के सवा तीन बजे थे। मैं अपनी घड़ी की ओर बाल-सुलभ उत्सुकता से ध्यानपूर्वक देख रहा था कि पीछे से किसी स्त्री की खिलखिलाहट सुनाई दी—स्त्री की वह व्यग्र हँसी जो मुझे बहुत प्रिय है, वह हँसी जो वासना-दग्ध हृदय से फूट पड़ती है। मेरी इच्छा हुई कि मैं सिर घुमाकर उस स्त्री को देखूँ, जिसकी उन्मुक्त वासना-भिव्यक्ति ने मेरा दिवास्वप्न भंग कर दिया था जैसे सफेद पत्थर का कोई टुकड़ा ताल के शान्त गहरे जल में फेंक दिया गया हो। किन्तु मैंने अपने आपको रोका। मनोविज्ञान के छोटे-मोटे प्रयोग करने का शुरू से ही मुझे चाव रहा है। आज भी इसी प्रयोजन से मैंने अपनी इच्छा को रोक दिया। अभी मैं इस खिलखिलाती हुई स्त्री की ओर नहीं देखना चाहता था, मैं पहले उसके बारे में अन्दाज़ा लगाना चाहता था, उसकी आकृति, मुख, गर्दन और उन्नत उरोजों को मैं कल्पना

मैं देखने की चेष्टा कर रहा था । पहले मैं उसका पूरा काल्पनिक चित्र खींच लेना चाहता था ।

वह मेरे पीछे ही खड़ी थी । हँसी रुकी तो उसने बात करना शुरू कर दिया । मैं कान लगाकर सुनने लगा । उसका उच्चारण कुछ-कुछ हंगेरियन था । वह बड़ी प्रफुल्लित होकर तेजी से बात कर रही थी, गायक की भाँति वह स्वरों पर जोर देकर बोल रही थी । उसकी आवाज़ को अपने काल्पनिक चित्र के साथ सम्बद्ध कर देने में मुझे और भी आनन्द आया । मैंने अपनी कल्पनाओं में काले बाल और बड़ी-बड़ी काली आँखें बनाई, वासना से कुंचित कुछ लम्बा-सा मुँह बनाया, स्फटिक की भाँति श्वेत दंत-पंक्ति, पतली लम्बी नाक जिसमें बड़े-बड़े कोमल नथुने, और उसके बाएँ गाल पर एक तिल भी बनाया । उसके हाथ में एक छड़ी होगी, जिसके एक सिरे पर बाल होंगे । इस छड़ी को वह बार-बार अपने “स्कर्ट” (घाँघरे) पर मार रही होगी । वह बात कर रही थी और उसके प्रत्येक शब्द से मेरे चित्र में क्रमानुसार उसका एक-एक अंग बढ़ता जा रहा था । अवश्य ही उसके उरोज कुमारियों की भाँति छोटे और सुडौल होंगे, पोशाक गहरे हरे रंग की होगी, जिसमें हीरे का एक आँकड़ा लगा होगा, उसके हलके रंग के हैट में एक सफेद पंख लगा होगा । धीरे-धीरे यह चित्र और भी साफ होता गया और मैं महसूस करने लगा कि मेरे पीछे खड़ी अदृष्ट तरुणी का पूरा चित्र मेरी

आँखों में उतर आया है । लेकिन मैंने घूमकर देखा नहीं, आँखें बन्द करके सोचने लगा कि जब घूमकर देखूंगा तो वास्तविकता मेरे काल्पनिक चित्र से हूबहू मिल जायगी ।

लेकिन तभी वह आगे बढ़ आई । अनिच्छापूर्वक मैंने अपनी आँखें खोल दीं । उसे देखकर मुझे झुंझलाहट आई—सारा चित्र गलत बना था । प्रत्येक चीज़ मेरे चित्र से एकदम भिन्न, एकदम उलटी निकली ! हरे रंग की जगह वह सफेद रंग का गाउन पहने थी ; छरहरे बदन की न थी, उसका वक्ष दबा हुआ और नितम्ब स्थूल थे, उसके फूले हुए गालों पर मेरा कल्पित तिल भी न था । उसके हैट के नीचे दिखाई देने वाले बाल काले नहीं, सुनहले थे । एक भी बात सही नहीं निकली । वह सुन्दर तो थी, वास्तव में आकर्षण उसमें था, लेकिन मेरे मनोविश्लेषण के झूठे पड़ जाने से मेरे स्वाभिमान को धक्का पहुँचा था । अपनी हार स्वीकार करने में मुझे बुरा लग रहा था । मैं उसकी ओर दुर्भाव से देखने लगा, पर साथ ही मुझे उसके उद्धत सौन्दर्य को मन ही मन स्वीकार भी करना पड़ा । उसकी पुष्ट किन्तु कोमल रूपरेखा की आकर्षक वासना को मैं महसूस कर रहा था ।

एक बार फिर वह खिलखिलाकर हँस पड़ी और उसकी मजबूत सफेद दंत-पंक्ति दिखाई दी । अब मुझे पता लग गया कि उसके वासनापूर्ण हास्य का उसकी शारीरिक विपुलता के साथ पूरा सामंजस्य था । उसके प्रत्येक अंग में प्रत्येक आव-

रण में एक चुनौती-सी थी, उसके सुडौल शरीर में, उसकी हँसी में, उसकी पैनी नज़र में, उद्धत नासिका में, उस हाथ में भी, जिसमें छाता लेकर वह दृढ़ता के साथ ज़मीन पर टिकाए थी। यह था नैसर्गिक नारीत्व, आद्य-शक्ति, संचेत सम्मोहन, मूर्त्त वासना का आलोक-स्तम्भ ! उसके पास ही बहुत साफ कपड़ों में सजा हुआ एक सूखा-सा अफसर ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रहा था। उसकी बातें सुनकर वह मुस्करा रही थी, हँस रही थी और यथेष्ट उत्तर-प्रत्युत्तर भी दे रही थी। लेकिन यह सब ऊपरी खेल था, असल में तो वह अपने चारों ओर के घेरे को मानों बड़ी आतुरता से पी रही थी। पास से गुज़रने वालों का (खासतौर पर पुरुषों का) ध्यान आकर्षित कर रही थी और बदले में उनकी मुस्कराहट पा रही थी। उसकी चंचल आँखें चारों ओर घूम रही थीं।

जब कोई ज्ञान-पहिचान का व्यक्ति दिखाई दे जाता, तो वे चमक उठतीं थीं। साथ ही वह अपने साथी की बात सुनती, मुस्कराती और इधर-उधर नज़रें फेंकती जाती थी। लेकिन उसकी नज़र मेरे ऊपर न पड़ी क्योंकि मेरे आगे उसका साथी खड़ा था। इससे मेरे मन को ठेस लगी। मैं उठ खड़ा हुआ, फिर भी उसने मेरी ओर नहीं देखा। मैं और भी पास पहुँच गया, लेकिन अब वह पीछे की ओर देखने लगी थी। निश्चयपूर्वक मैं उसके एकदम निकट पहुँच गया और अपना हैट उठाकर मैंने उसे अपनी कुर्सी अर्पित की। कुछ आश्चर्य से उसने

ओर देखा, उसकी आँखें चमक उठीं, ओठों पर मधुर मुस्करा-
हट खेलने लगी और सूक्ष्म से कृतज्ञता-ज्ञापन के बाद उसने
कुर्सी स्वीकार कर ली, लेकिन उस पर बैठी नहीं। उसने
केवल अपना सुन्दर हाथ ही कुर्सी की पीठ पर रख लिया।
इससे वह आगे की ओर थोड़ी झुक गई और उसकी आकृति
और भी सुन्दर भंगिमा में दिखाई देने लगी।

अपने चित्र के असफल होने पर मुझे जो झुंझलाहट आ
गई थी, उसे मैं तब तक भूल चुका था। अब मैं केवल इस
स्त्री के साथ अपने खेल के बारे में ही सोच रहा था। मैं
पण्डाल की दीवार की ओर बढ़ गया, जहाँ से मैं दूसरों का
ध्यान आकर्षित किए बिना उसे भलीभाँति देख सकूँ। उसे
मेरी टकटकी का आभास जल्दी ही हो गया। वह मेरी ओर
मुड़ी, लेकिन स्वाभाविक तौर पर, मानो यह संयोग हो, कोई
खास बात न हो। मैं जो बिना एक शब्द बोले उसकी ओर
बढ़ता जा रहा था, उससे उसे कोई ऐतराज नहीं था, बल्कि
वह थोड़ा बहुत बढ़ावा ही दे रही थी। उसके चंचल नयन
अत्रिराम गति से इधर-उधर घूम रहे थे, कोई एक चीज़ उन्हें
अधिक देर तक न बाँध पाती थी। जब उसने मेरी ओर
देखा था तो क्या वह किसी विशेष प्रयोजन से मुस्कराई थी ?
मुझे इसका पूरा निश्चय नहीं था, और इस शंका के कारण
मैं उद्विग्न हो उठा। रह रहकर, जब भी उसकी नज़र मेरी
नज़र से मिलती तो मुझे उसकी आँखों में एक वादा भरा
दिखाई देता था। लेकिन वह तो बिना किसी भेदभाव के

हरेक आदमी की ओर उसी तरह देख रही थी, मानो अपनी चंचल वासना को तृप्त करने का प्रयत्न कर रही हो, ठीक उसी तरह जिस तरह वह अपने साथी की ओर भी पूरा-पूरा ध्यान देती दिखाई देती थी। उसके इस आत्मप्रदर्शन में कुछ ढिठाई थी। मैं सोच रहा था, यह औरत क्या बिल्कुल ही चंचला है ? क्या वह अपनी अतिरिक्त पाशविक वासना के कारण बेचैन है ?

मैं एक कदम और आगे बढ़ा, अब मैं उसके हावभाव का शिकार बन चुका था। अब मैं उससे नज़रें नहीं मिला रहा था, बल्कि उसकी रूपरेखा को तौल रहा था। उसने मेरी दृष्टि का अनुसरण किया फिर भी उसके मुँह पर परेशानी का कोई चिह्न नहीं आया। उसके ओठों के कोनों पर मुस्कराहट (शायद उस अफसर की बात पर) झलक आई। लेकिन साथ ही मुझे भी विश्वास हो गया कि वास्तव में यह मुस्कराहट मेरे झुकाव का ही जवाब है। इसके बाद जब मैं उसके पैरों की ओर देखने लगा तो उसने भी बेफिक्री से उसी ओर देखा और क्षण भर बाद अपना पैर कुर्सी पर रख लिया। 'स्कर्ट' (घाघरा) ऊपर को सरक जाने से उसका पैर घुटने तक खुल गया। इस समय जिस मुस्कराहट के साथ वह अपने साथी की ओर देख रही थी, वह स्पष्ट ही बनावटी दीख रही थी। यह भी स्पष्ट था कि वह मेरे साथ उतनी ही निर्लिप्त होकर खेल रही है जितना कि मैं। उसकी इतनी हिम्मत और चालाकी भरी चाल की मैं मन ही मन

प्रशंसा करने लगा, लेकिन इस प्रशंसा में वितृष्णा भी थी, क्योंकि बनावटी ढंग से अपने शारीरिक सौन्दर्य की झलक दिखाने के साथ ही साथ वह अपने प्रेमी की बातचीत का भी पूरा-पूरा उत्तर दे रही थी। वह हम दोनों से एक साथ खेल रही थी। मेरा मन खट्टा हो गया; दूसरों में यह ठंडी और हिसाबी वासना मुझे अच्छी नहीं लगती, क्योंकि मुझे पता था कि अपने मन के जिस उदासीन भाव का मुझे ज्ञान है उसके साथ इसका अत्यन्त निकट सम्बन्ध होता है। फिर भी मेरी वासनाएँ जाग उठीं, यद्यपि इस उद्वेलन का कारण विरक्ति थी, आकांक्षा नहीं। धृष्टतापूर्वक मैं उसके और भी निकट चला गया और उसकी ओर नग्न पाशविकता से टकटकी लगा कर देखने लगा। मेरी बेपर्दा आँखें उस समय कह रही थीं, “मैं तुम्हें चाहता हूँ, तुम्हें, सुन्दर जीव।” और अनजाने ही मेरे ओठ अवश्य हिल उठे होंगे क्योंकि वह अब अवज्ञापूर्वक मुस्कराई और उसने अपना मुँह फेर लिया। साथ ही उसने अपने खुले हुए अंग पर वस्त्र भी ठीक तरह ढँक दिया। किन्तु क्षण भर बाद ही उसके काले चमकीले नेत्रों ने अपनी अथक यात्रा फिर से प्रारम्भ कर दी। सब तरह से वह मेरे जोड़ की थी। वह भी उतनी ही ठंडी थी जितनी कि मैं, उतनी ही निर्लिप्त। हम दोनों ही एक बाहरी आग से खेल रहे थे, और यह आग तसवीर की लौ से ज्यादा कुछ नहीं थी, लेकिन मनोहर थी। नीरस समय बिताने का यह एक मजेदार साधन था।

एकाएक उसके चेहरे की चपलता गायब हो गई, और उनके नेत्रों की चमक मन्द हो गई। हालाँकि वह मुस्करा रही थी, लेकिन अब उसके मुँह के कोनों पर झुंझलाहट की सिकुड़न आ गई। मैंने उसकी दृष्टि का अनुसरण किया तो मुझे एक नाटा, मोटा-सा, आदमी तेजी से उसकी ओर बढ़ता दिखाई दिया। उसके कपड़े उसके शरीर पर अस्त-व्यस्त लटके हुए थे। भड़भड़ी और जल्दी के मारे उसके माथे पर पसीना आ रहा था, जिसे वह घबरा कर बार-बार रुमाल से पोंछ लेता था। उसका हैट टेढ़ा लगा था और उसकी गंजी खोपड़ी दिखाई दे रही थी। (मैं कल्पना में देख रहा था कि इस हैट के नीचे उसकी खोपड़ी पर पसीने की बूंदें चमक रहीं हैं और मेरी गर्दन उसके ऊपर झुकी हुई है।) उसके रत्नों से जगमगाते हुए हाथों में बाज़ी लगाने की पच्चियों की एक गड़्डी थी। उसकी उत्तेजना फटी पड़ती थी। अपनी पत्नी की ओर ध्यान न दे कर वह 'मग्यार' भाषा में उस अफसर से ज़ोर-ज़ोर से बातें करने लगा। जाहिर था कि वह 'रेस भक्त' प्राणी है, शायद घोड़ों का समृद्ध व्यापारी भी हो जिसके लिए यह खेल ही साधना हो और इसी ने उसकी सर्वोच्च कामना का स्थान ले लिया हो। उसकी पत्नी ने धीरे से कोई इशारा किया होगा (स्पष्ट था कि वह उसके आने से अप्रसन्न थी, उसका सहज आत्म-विश्वास लुप्त हो चुका था।) क्योंकि उसने अपना हैट सीधा किया, खिलखिला कर हँसा और उसके कंधों को स्नेहपूर्वक थपथपाया क्रोध से उसकी

स्त्री की भौंहों में बल पड़ गए। इस अफसर की, और शायद उससे अधिक मेरी उपस्थिति में दाम्पत्य घनिष्टता का यह अभद्र प्रदर्शन उसे अच्छा नहीं लगा। मुझे लगा कि उसका पति क्षमा-याचना का एक शब्द कह कर उस अफसर से बातें करने लगा जो विनीत भाव से मुस्करा कर उत्तर दे रहा था। थोड़ी देर बाद इस नवागंतुक ने बड़े स्नेह और किंचित् कातर भाव से अपनी स्त्री की बांह में बांह डाल दी। मुझे साफ दिख रहा था कि घनिष्टता का यह सार्वजनिक प्रदर्शन उस स्त्री के लिए अरुचिकर था और उसकी यह दुर्दशा देख कर मैं अपना आनन्द न दबा सका। इस दृश्य ने मेरे मन में घृणा का पुट लिए एक आनन्द का भाव जगा दिया। लेकिन एक क्षण बाद ही वह सहज हो गई और अपने पति की बांह हलके से दबाते हुए उसने मेरी ओर व्यंग्य भरी नज़र फेंकी मानो वह कह रही हो, “देख लो, मैं इनकी हूँ, तुम्हारी नहीं।” इससे मुझे क्रोध भी आया और वितृष्णा भी हुई। मेरी तबियत वहाँ से पलट कर चल देने की हुई जिससे मैं उसे दिखा सकूँ कि ऐसे फूहड़ आदमी की पत्नी में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है। तो भी वास्तव में उसका आकर्षण ज़बरदस्त था। मैं अपनी जगह पर अड़ा रहा।

तभी दौड़ शुरू होने का संकेत हुआ। जो लोग अभी तक बातचीत में लगे थे वे एकदम चुप हो गये, मानों सबको एक साथ पाला मार गया हो। प्रत्येक व्यक्ति ‘रेलिंग’ की ओर दौड़ने लगा। मैं अपने को इस भीड़ के साथ जाने से

जबरदस्ती रोके रहा, क्योंकि मैं इस स्त्री के पास ही खड़ा रहना चाहता था, शायद निश्चयात्मक रूप से आँखें चार होने का मौका मिल जाए, हाथ मिल जाय या और किसी तरीके से वह आगे बढ़े । इसलिए दृढ़तापूर्वक मैं इस भागती हुई भीड़ में से उसको ओर बढ़ा । उसी क्षण उसका स्थूलकाय पति खड़े होने के लिए किसी अच्छी जगह की तलाश में विपरीत दिशा में बढ़ा । इस प्रकार अपनी-अपनी धुन में बढ़ते हुए हम दोनों इतनी जोर से एक-दूसरे से टकरा गए कि उसका हैट छिटक कर ज़मीन पर गिर गया और उसकी पट्टी में से लाल, नीली, पीली पचियाँ निकल कर तितलियों की भाँति मैदान में बिखर गयीं । उसने मुझे घूरा और यंत्रवत् माफी माँगना ही चाहता था कि दुष्टता ने मेरे ओठ सी दिए और मुझे बाध्य कर दिया कि मैं उसे ओर भड़काने के लिए उसकी ओर देखता रहूँ । थोड़ी देर तक वह मेरी टकटकी सहता रहा, लेकिन इस निर्निमेष दृष्टि के कारण परेशानी से उसका चेहरा सुख हो गया । फिर उसकी आँखें झुक गयीं । घबराहट उसके मुँह पर आ गयी जिसने मुझे करुणा से लगभग द्रवित कर दिया । उसने अपना मुँह फेर लिया, शायद अचानक उसे अपनी पचियों का खयाल हो आया और वह अपना हैट और पचियाँ उठाने के लिए झुका । इस घटना से उसकी पत्नी का चेहरा तमतमा उठा, वह भौंहेँ सिकोड़े मेरी ओर घूर रही थी और एक गूढ़ आनन्द से मैंने देखा कि उसकी तबियत मेरे मुँह पर तमाचा मारने की हो रही थी । मैं उदासीन भाव से मुस्करा कर खड़ा-खड़ा देखता रहा,

पश्चियाँ बीनने में उसके पति को सहायता देने का प्रयास भी मैंने नहीं किया । आगे को झुकते समय उसका कौलर गर्दन से ऊपर उठ जाता था । उसके नीचे चर्बी का लोथड़ा दिखाई देने लगता था मानो मुर्गी ने अपने पंख फुला लिए हों । झुकते समय उसे खाँसी आ जाती थी, शायद उसे दमा की बीमारी रही होगी । इस मजेदार दृश्य को देख कर मैं फिर एक बार मुस्करा उठा । अब उसकी पत्नी के लिए अपना क्रोध दबाना कठिन हो गया । उसका चेहरा सुख नहीं, फ़क हो गया था । अब तक मैंने उसको दो वास्तविक भाव दिखाने के लिए मजबूर कर दिया था—एक घृणा का और दूसरा अदम्य क्रोध का । मैं चाहता था कि उसकी दुर्गति का यह दृश्य अनिश्चित काल तक चलता रहे और मैं पश्चियाँ बीनने के उसके प्रयत्न का विद्वेषपूर्ण आनन्द उठाता रहूँ । मालूम होता था कि कोई सनकी भूत मेरे सिर पर सवार हो गया है जो मेरे कण्ठ में अन्दर ही अन्दर खिलखिला रहा है और हँसी में फूट पड़ना चाहता है । उसके रेंगते हुए स्थूल मांस-पिण्ड को अपनी छड़ी से कोंचने की मेरी इच्छा हो रही थी । मुझे याद नहीं कि कभी भी मेरे मन पर इतना विद्वेष छाया हो जितना कि इस उद्धत स्त्री के आगमन पर अपनी विजय के अनुभव में ।

अब तक उस बेचारे ने समझ लिया कि उसने सब पश्चियाँ बीन लीं हैं । लेकिन असल में वह एक नीली पर्ची को नहीं देख पाया था । यह पर्ची एक ओर को उड़ गयी थी । वह अपनी मंद दृष्टि से अब भी इधर-उधर देख रहा था । पसीने

के कारण उसका चश्मा नाक पर नीचे सरक आया था । उसे और भी तंग करने की दुष्ट भावना से प्रेरित होकर मैंने आगे बढ़ कर उस नीली पर्ची को अपने पैर से दबा लिया और चुपचाप खड़ा हो गया । जब तक मैं इसी तरह खड़ा रहूँगा तब तक इस पर्ची को तलाश करना उसके लिए असम्भव होगा । वह ढूँढ़ रहा था अपने हाथ की पर्चियों को बार-बार गिनते हुए बड़बड़ाता जा रहा था । एक पर्ची तो अब भी कम थी । वह इस बढ़ती हुई धमाचौकड़ी में फिर लौट कर तलाश करने को उद्यत था । उसकी पत्नी आग-बबूला हो कर मेरी विद्रूपपूर्ण निगाह बचा रही थी—अब वह अपनी अधोरता पर काबू न रख सकी ।

अचानक आदेश के स्वर में उसने आवाज़ दी—‘ लाजोस ।’

बिगुल की आवाज़ पर चल पड़ने वाले घोड़े की भाँति वह लौट पड़ा । चलते-चलते एक बार फिर उसने घूम कर ज़मीन पर निगाह फेंकी । मेरे पैरों के नीचे दबी हुई पर्ची मेरे तलवे में गुदगुदी मचाने लगी और मैं मुश्किल से ही अपनी हँसी रोक सका । फिर वह अपनी पत्नी की ओर घूमा, जो एक दिखावटी फुर्ती के साथ उसे भीड़-भड़के में ले गई ।

उन लोगों के पीछे-पीछे जाने की ज़रा भी तबियत नहीं हुई और मैं जहाँ का तहाँ खड़ा रहा । जहाँ तक मेरा सम्बन्ध था, मामला खतम हो चुका था । काम-बासना के तनाव के

स्थान पर मधुर शांतिभाव आ गया था । मेरी उत्तेजना ठंडी पड़ गयी थी, और शैतानियत की इस आकस्मिक भड़क के बाद एक स्वस्थ तृप्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं बचा था—हाँ, अपने वार की सफलता पर गर्वपूर्ण संतोष के अतिरिक्त अब और कोई भावना नहीं थी । मेरे आगे दर्शकों की एक सघन भीड़ खड़ी थी । लोगों का आवेश प्रतिक्षण बढ़ता जा रहा था । एक काली गन्दी लहर के समान वे रेलिंग पर दबे आ रहे थे, लेकिन मैं घुड़दौड़ों से ऊब चुका था और इस दौड़ की ओर देखने की इच्छा नहीं हो रही थी । घर लौट जाऊँ तो भी कोई बात नहीं । इस विचार को कार्यरूप में परिणत करने के लिए मैंने पैर उठाया ही था कि वह नीली पर्ची फिर दिखाई दी । उसे तो मैं भूल ही चुका था । उसको उठाकर मैं उँगलियों में मरोड़ता रहा, समझ में नहीं आ रहा था कि इसका मैं क्या करूँ । कभी धुँधला-सा खयाल आता कि लाओ इसे 'लाजोस' को ही लौटा दूँ क्योंकि इससे उसकी पत्नी से जान-पहचान करने का अच्छा मौका मिल जाएगा । लेकिन तभी मैंने अनुभव किया कि मुझे अब उसमें कोई दिलचस्पी नहीं रह गयी है, इस घटना की अग्नि ठंडी पड़ चुकी है और मैं अपनी स्वाभाविक उदासीनता में फिर से डूब गया हूँ । लाजोस की पत्नी के साथ नज़रों से तनातनी ही मेरे लिए बहुत काफी थी, उस स्थूल जीव की पत्नी में हिस्सा बँटाने का विचार अरुचिकर था । इंद्रियों की अस्थायी गुदगुदी का आनन्द मैंने उठा लिया था, इसके बाद मधुर विश्रान्ति का अनुभव मैं कर रहा था ।

एक खाली कुर्सी पर आराम से बैठ कर मैंने सिगरेट सुलगा ली । आवेग की वह छोटी-सी लौ भभक कर बुझ चुकी थी । एक बार फिर निर्लिप्ति का भाव छा गया था । पुराने अनुभवों की पुनरावृत्ति में अब मज़ा नहीं । सिगरेट के धुँए के छल्लों को देखता हुआ मैं अपनी मेरन यात्रा के बारे में सोच रहा था । लगभग दो महीने पूर्व मैं वहाँ बैठ कर जलप्रपात देख रहा था । वहाँ भी एक अनवरत निनाद था जो मुझे जगा नहीं सका था, वह भी एक निरर्थक शोर था जो नीलाभ भूदृश्य की शांति को पार करके उड़ा चला जा रहा था । अब इस दौड़ का जोश फिर एक नये शिखर पर पहुँच रहा था । जनसमूह की काली लहर के ऊपर हिलते हुए छाते, हैट और रूमाल फेन की भाँति नज़र आ रहे थे । एक बार फिर भीड़ का कोलाहल एक ही आवाज़ में घनीभूत हो गया । हज़ारों कण्ठों से उल्लास अथवा निराशा के कारण निकला हुआ एक ही शब्द मुझे सुनाई पड़ने लगा—“क्रेसी ! क्रेसी ! क्रेसी !” इसके बाद अनायास ही यह शोर रुक गया, मानो वीणा का तार टूट गया हो । बैण्ड फिर बज उठा, भीड़ फिर टोलियों में बँट गयी । जीतने वाले घोड़ों के नम्बर बोर्ड पर लगा दिए गए; अर्द्ध चेतनता से मैंने उन पर नज़र डाली । अब्बल आने वाले घोड़े का नम्बर सात था । यंत्र की भाँति मैंने अपने हाथ की पर्ची का नम्बर देखा । यहाँ भी सात का ही अंक था ।

अब मैं अपनी हँसी को न रोक सका । लाजोस महाशय ने अब्बल आने वाले घोड़े पर बाज़ी लगा रखी थी । मेरे

विद्वेष के आक्षेप ने सचमुच इस मुटल्ले पति का धन लूट लिया था । शैतानियत का भाव फिर से जाग गया, मेरी ईर्ष्या की कितनी कीमत उसे चुकानी पड़ी, यह देखना मज्जेदार होगा । पहली बार मैंने उस पर्ची को ग़ौर से देखा । बीस क्राउन की 'विन' की पर्ची थी, 'प्लेस' की नहीं । अगर भाव अच्छा रहा तो इस पर्ची का मूल्य अब काफ़ी होगा । जिज्ञासा की प्रेरणा का अनुसरण करते हुए मैं भुगतान की खिड़की की ओर जा भीड़ में मिल गया । मैं पक्ति में खड़ा हो गया और जल्दी ही खिड़की पर पहुँच गया । मैंने अपना टिकट दिया और दो पतले फुर्तीले हाथों ने (मुझे भुगतान करने वाले क्लर्क की शक्ल नहीं दिख रही थी ।) बदले में मुझे बीस-बीस क्राउन के नौ नोट थमा दिये ।

इस समय, जब यह रुपया मेरी ओर बढ़ाया जा रहा था, मेरे कण्ठ में हँसी अटक गयी । मुझे क्लेश होने लगा, और एक बार तो मैंने अपना हाथ भी खींच लिया कि कहीं मुझे पराया धन न छूना पड़े । सचमुच इन नीले नोटों को वहीं खिड़की पर छोड़ कर चले जाने की इच्छा होने लगी । लेकिन मेरे पीछे और लोग भी खड़े थे, जो अपनी जीत का धन लेने के लिए उतावले हो रहे थे । इसलिए इस धन को उठा लेने के सिवा और कोई चारा न था । ऐसा महसूस हो रहा था जैसे वे नोट आग की नीली लपटें हों, जो हाथ उन्हें पकड़े था उसे झटक कर मैं इन नोटों को फेंक देना चाहता था । लेकिन फौरन मुझे अपनी लज्जाजनक स्थिति का खयाल आया ।

मज़ाक बड़ा गहरा हो गया था, वह मेरे जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति, एक 'रिज़र्व' अफसर के सर्वथा असंगत था। मैं जो कुछ कर गुज़रा था उसे सही नाम से पुकारने में मुझे शिश्नक हो रही थी। मेरी मुट्ठी का धन केवल धन नहीं था, वह धोखाधड़ी का धन था, चोरी का माल था।

मेरे चारों ओर बातचीत का फौव्वारा छूट रहा था। लोग भुगतान लेते चले जा रहे थे। मैं भौचक्का-सा इस अवांछनीय धन हाथ में लिए खड़ा था। इसके अतिरिक्त और कर भी क्या सकता था? मेरा सबसे पहला विचार तो इस धन के असली मालिक को तलाश करके उसे वापस लौटाने और माफ़ी माँगने का हुआ। लेकिन ऐसा मैं कैसे कर सकता था? उस स्त्री के साथ वाले अफसर के सामने तो यह चीज़ एकदम असम्भव होगा। इससे बदनामी फैल जाएगी और मैं लेफ्टिनेण्टी से हाथ धो बैठूंगा, कारण कि यदि वह पर्ची मुझे संयोगवश मिल भी गयी थी तो मुझसे यह अपेक्षा की जाती थी कि मैं उसे लौटा दूंगा। किसी दूसरे की पर्ची का धन ले लेना मेरे लिए बड़ी भद्दी बात थी। एक विचार यह आया, इन नोटों को मोड़माड़ कर एक ओर फेंक दूं। लेकिन इस भीड़-भड़क्के में किसी न किसी की नज़र मेरे इस काम पर पड़ ही जायगी और इससे सन्देह जगेगा। तो भी इस धन को अपने पास रखने की बात मैं सपने में भी नहीं सोच सकता था। इसे मैं अपने बटुए में तब तक के लिए भी

स्थान नहीं दे सकता था, जब तक कि इसे किसी उपयुक्त आदमी के हवाले न कर दूँ। रुपए-पैसे के मामले में उचित-अनुचित का प्रखर भाव मेरे मन में बचपन से ही भर दिया गया था। और इस धन को अपने हाथ में रखना उतना ही क्लेशकर था जितना कि गन्दी कमीज़ को धारण करना। किसी भी तरह, जैसे भी हो, मैं कागज़ के इन दुष्ट टुकड़ों से जल्दी से जल्दी छुटकारा पाना चाहता था। मैं निराशा से, घबराकर, चारों ओर देख रहा था, और कहीं भी छिप जाने की जगह या इन नोटों से चुपचाप छुटकारा पाने का तरीका दिखाई नहीं पड़ रहा था। तभी मैंने देखा कि खिड़की तक पहुँचने के लिए लोगों की एक नयी लाइन लग रही है, इस बार लोगों के हाथों में पचियों की जगह नोट थे। मुझे अपनी कठिनाई में से निकलने का रास्ता मिल गया। यह धन संयोग से मुझे मिला था, अब मैं एक बार फिर इसे संयोग की हवा में ही उड़ा दूँगा। मैं इस धन को उस खिड़की के सर्वग्राही मुँह में झोंक दूँगा। हाँ, मुक्ति पाने का यही रास्ता है।

और मैं तेज़ी से खिड़की की ओर बढ़ गया। अब मेरे आगे दो ही बाज़ी लगाने वाले थे। आगे वाला खिड़की पर पहुँच चुका था, तभी एकाएक मुझे खयाल आया कि मुझे तो दौड़ के एक भी घोड़े का नाम नहीं

मालूम । मैं अपने पास खड़े हुए आदमियों की बातचीत सुनने लगा । एक ने पूछा, “तो तुम ‘रैवेल’ पर ही बाज़ी लगाओगे ?”

उत्तर मिला, “और क्या ?”

“लेकिन ‘टैडी’ क्या अच्छा नहीं रहेगा ?” पहले ने पूछा ।

“टैडी ? नहीं जी, मेरी बात मान लो, वह ठीक नहीं रहेगा ।”

मैंने यह बातचीत सुन ली । ‘टैडी’ अच्छा घोड़ा नहीं है, शायद जीतेगा भी नहीं । ठीक है, मैं ‘टैडी’ पर ही बाज़ी लगाऊँगा । मैंने सारा धन रख दिया और उस घोड़े पर बाज़ी लगा दी जिसका नाम मैंने अभी ही पहली बार सुना था । नोटों के बदले में मुझे नौ लाल-सफेद पर्चियाँ मिलीं । इन्हें भी पकड़ना कष्टप्रद था, लेकिन इनसे उन चिकने नोटों की भाँति मेरी उँगलियाँ जलने नहीं लगीं ।

अब मैंने चैन की साँस ली, अब मैं निश्चित हो गया । इस धन से मुझे छुटकारा मिल गया था, इस घटना के कुफल को मैंने फाड़ कर फेंक दिया था । यह मामला एक बार फिर प्रारम्भ की ही भाँति मज़ाक़ बन कर रह गया । मैं अपनी कुर्सी पर वापस लौट आया, और सिगरेट सुलगा कर नये

संतोष के साथ धूँए के छत्ते बनाने लगा । लेकिन यह मनो-स्थिति भी अधिक देर तक नहीं चली । मैं फिर से बेचैन हो गया; उठा, थोड़ा इधर-उधर टहला और बैठ गया । मेरा मधुर दिवास्वप्न भंग हो गया । एक प्रकार की स्नायुविक बेचैनी छा गयी । पहले तो मैंने सोचा कि यह शायद लाजोस और उसकी पत्नी के साक्षात्कार होने के भय के कारण होगी । लेकिन उन्हें क्या सपना होगा कि यह पर्ची उन्हीं की थी ? न यह बेचैनी भीड़-भाड़ के कारण थी ।

वास्तव में मैं यह देख रहा था कि लोग रेलिंग की ओर बढ़ रहे हैं या नहीं । बार-बार खड़ा होकर मैं उस झंडी की ओर देख रहा था जो दौड़ प्रारम्भ होने के पहले फहरा दी जाती है । हाँ, निश्चय ही मैं अधीर हो उठा था । प्रतीक्षा की व्याकुलता ने मुझे जकड़ लिया था । मैं इस दौड़ के इंतज़ार में था जिसके बाद सदैव के लिए इस अशोभन घटना की इतिश्री हो जाएगी ।

घुड़दौड़ की पत्रिकाओं का बंडल लिए हुए एक आदमी पास से निकला । मैंने इशारे से उसे बुलाया, एक पत्रिका खरीदी और उसके कालम छानने लगा । घुड़दौड़ सम्बन्धी अटपटी भाषा और जोड़-तोड़ के अन्त में मुझे 'टैडी' का नाम दीख पड़ा । उसके सवार और मालिक के नाम मैंने देखे और देखा कि सवार के कपड़ों का रंग सफेद और लाल है । लेकिन इन सब बातों से मुझे क्या सरोकार ? गुस्से से मोड़माड़ कर

मैंने पत्रिका फेंक दी, उठ खड़ा हुआ और फिर बैठ गया । अचानक मुझे गर्मी लगने लगी—मैंने अपना पसीना पोंछ लिया । । कालर कुछ कड़ा मालूम पड़ने लगा । दौड़ क्या कभी शुरू ही न होगी ?

आखिर घंटी बजी । भीड़ दौड़ कर रेलिंग की ओर गयी । मुझे बड़ी झुंझलाहट आयी, क्योंकि इस घंटी ने मुझे झकझोर दिया था, जैसे किसी सोते हुए आदमी को । मैं उछल कर खड़ा हो गया, मेरी कुर्सी पलट गयी, और मैं भीड़ की ओर चल पड़ा—नहीं, मैं भीड़ की ओर दौड़ा । मैं अपनी पचियाँ कस कर पकड़े हुए था । मुझे डर था कि कहीं मुझे देर न हो जाए और कोई बहुत महत्वपूर्ण चीज़ न निकल जाए । खींचतान करके मैं आगे बढ़ा, रेलिंग तक पहुँचा और कुर्सी खींच कर जम गया जिस पर एक महिला बैठने वाली थी । लेकिन वह जान-पहिचान की निकलीं, श्रीमती 'ब' थीं । उनके चकित और क्रुद्ध भाव से मुझे अपनी अशिष्टता और व्यग्रता का भान हुआ । किन्तु लज्जा और उद्दंडता की उपेक्षा करके मैं कुर्सी पर बैठ कर तमाशा देखने लगा ।

इस मैदान के उस पार बहुत दूर छोटे-छोटे सवारों के प्रयत्न के बाद भी दौड़ने को आतुर घोड़े मुश्किल से ही सीधी पंक्ति में खड़े हो रहे थे । यहाँ से वे सब रंग-बिरंगी कठ-पुतलीं प्रतीत होते थे । मैंने अपने घोड़े के सवार का रंग पहिचानने की चेष्टा की, लेकिन इस मामले में मेरी आँखें

अनभ्यस्त निकलीं । मेरी आँखों के सामने कोई चीज़ अजीब तरह से भभकती-सी दिखाई दे रही थी और मैं लाल-सफेद को पहचान न सका ।

अब दूसरी बार घंटी बजी और एक ही धनुष से एक साथ छूटे हुए सतरंगे तीरों के समान घोड़े चल पड़े । जो लोग रेस को विशुद्ध कलात्मक आनन्द के लिए निर्लिप्ति भाव से देख सकते हैं, उनके लिए यह कितना आश्चर्य-जनक होगा । उन लोगों के लिए, जो इन चुस्त घोड़ों की सरपट चाल को देख सकते हैं, जो लगभग पक्षियों की उड़ान के समान ही स्वच्छन्द प्रतीत होती है । किन्तु मुझे तो इससे कोई सरोकार नहीं था । मेरी एकमात्र उत्कण्ठा अपने घोड़े और अपने सवार को पहिचान लेने की थी । अपनी दूरबीन न लाने के लिए मैं अपने आपको कोस रहा था । पूरी कोशिश करने पर भी ये घोड़े मुझे रंगबिरंगे कीड़ों से अधिक कुछ न दिखाई पड़ते थे । अन्त में उनकी आकृति कुछ बदली । अब दौड़ का रूप एक छैनी के आकार का हो गया, आगे का सिरा तेज़ और नुकीला और पीछे के सिरे पर घोड़ों का झुंड । दौड़ में घोड़े बाज़ी लगा रहे थे । अब भी तीन चार घोड़े झुंड में थे, कोई गर्दन भर आगे तो कोई गर्दन भर पीछे । इच्छा न होते हुए भी मैं पूरा उचक कर देखने लगा । मानों मेरे इस नकली और तेज़ तनाव के कारण उनकी रफ़्तार बढ़ जाएगी ।

आसपास के लोगों की उत्तेजना बढ़ती जा रही थी । रेस के अभ्यस्त लोग अब मोड़ पर घोड़ों के रंग पहिचान गये

होंगे । अब निरर्थक शोरगुल में से घोड़ों के नाम साफ सुनाई पड़ने लगे । मेरे पास ही एक दर्शक अत्यन्त व्याकुल होकर हाथ मल रहा था । अब जैसे ही एक घोड़ा आगे बढ़ा कि वह चिल्लाने लगा—

“रैवेशल ! रैवेशल !”

इस घोड़े के सवार की पोशाक का रंग नीला था । मुझे क्रोध आ रहा था कि जिस घोड़े पर मैंने बाजी लगाई है वह आगे क्यों नहीं आता । मेरे पास के आदमी की तेज आवाज़ “रैवेशल, रैवेशल” से मुझे तकलीफ हो रही थी । मुझे गुस्सा आ रहा था, तबियत हो रही थी कि इस चिल्लाने वाले के मुँह के काले छेद पर एक घूँसा जमा दूँ । क्रोध से मैं काँपने लगा । क्षण-प्रतिक्षण मैं ऐसे ही दाहियात काम करने को उद्यत हो रहा था कि एक घोड़ा पीछे से बढ़ता दिखाई दिया । शायद यह “टैडी” ही है—वही है—आशा ने फिर ज़ोर मारा । सवार की सुसंगठित से चलती हुई बाँह देख कर मैंने सोचा कि उसका रंग लाल है । हाँ, वह लाल हो सकती है, अवश्य ही वह लाल रंग की होगी । यह बदमाश अपना चाबुक ज़ोर से क्यों नहीं चला रहा ? अब उसने आगे वाले को पकड़ लिया, आधी गर्दन भर और रैवेशल क्यों ? नहीं, रैवेशल नहीं, नहीं । टैडी ! टैडी ! टैडी ही है । बढ़ा चल टैडी ।

मैं सामान्य हो गया । कोई ‘टैडी !’ ‘टैडी !’ की आवाज़ लगा रहा था । मैं ही तो चिल्ला रहा था । बड़े जोश में था ।

अपने आप पर मैं चकित हो गया । मैं अपने ऊपर नियंत्रण रखने की चेष्टा कर रहा था और एक क्षण को मुझे अपने उच्छृंखल व्यवहार पर लज्जा आयी, जोश को दबा दिया । लेकिन मैं अपने नेत्र उधर से हटा न सका, क्योंकि वे दोनों घोड़े अब भी बराबर ही चल रहे थे । यह 'टैडी' ही इस कम्बख्त 'रैवेशल' को पछाड़ने वाला है । मैं 'रैवेशल' से सम्पूर्ण हृदय से धृणा कर रहा था । अब चारों ओर से 'टैडी' 'टैडी' ! की आवाज़ आने लगी । थोड़ी देर की चैतन्यता के बाद फिर मुझे इस ऊधम की छूत ने पकड़ लिया । टैडी को ही जीतना होगा, वह अवश्य जीतेगा । अब वह सचमुच एक बालिष्ठ आगे आ गया, अब दो, अब उसका पूरा सिर और गर्दन आगे निकल गयी । तभी घंटी बजी, और आनन्द, निराशा और क्रोध की चिल्लाहट का एक धमाका-सा हुन्ना । पल भर के लिए मेरे मनचाहे नाम से आसमान गूँज उठा । फिर धीरे-धीरे शोर समाप्त हो गया और कहीं से बाद्य संगीत के स्वर आने लगे ।

जब मैं कुर्सी पर से उतरा तो गर्मी लग रही थी, पसीने में लथपथ हो गया था । मेरी कनपटी तेज़ी से धड़क रही थी । अपने मस्तिष्क के आन्दोलन को शांत करने के लिए मुझे थोड़ी देर बैठना पड़ा । एक अपूर्व तन्मयता ने मुझे पकड़ लिया था, भाग्य ने मेरी चुनौती का जो जवाब दिया था उसके मूर्खतापूर्ण आनन्द ने । मैंने अपने मन को यह समझाने का निष्फल प्रयत्न किया कि मैं अपने घोड़े की जीत कभी

नहीं चाहता था और यह कि मेरी इच्छा थी कि यह रुपया डूब जाए। अपने को समझाने-बुझाने पर भी मुझे भरोसा नहीं था, और जल्दी ही मुझे अपने पर एक प्रबल भाव का भान हो गया।

मैं एक विशेष दिशा की ओर खिंचने लगा—मैं जानता था कि मैं किधर जा रहा हूँ। मैं अपनी जीत को मूर्तरूप में देखना चाहता था, जीत के धन को छूना चाहता था—नीले-नीले नोटों को, बहुत सारे नोटों की सरसराहट को अपनी उँगलियों में अनुभव करना चाहता था। एक अजीब, स्वाभाविक, दुर्वासना ने मुझे घेर लिया था और मेरे मन में लज्जा की भावना भी नहीं रही थी, जो उसके हाथों अपने आपको आत्म-समर्पण करने से मुझे रोक दे। मैं जल्दी से भुगतान की खिड़की की ओर लपका। जीत के धन को हाथों में लेने की इच्छा से वशीभूत हो कर मैं अशिष्टतापूर्वक धकियाते हुए उन लोगों में आगे जा खड़ा हुआ जो अधीरता से खिड़की पर अपनी बारी आने का इंतज़ार कर रहे थे।

जिन लोगों को मैंने धक्के से हटा दिया था उनमें से एक बड़बड़ाया, “बेहूदा कहीं का।”

इस गाली को मैंने सुना, किन्तु अपनी अधीरता के आवेग में उसे पी गया। होते-होते मैं उस खिड़की तक जा पहुँचा और मेरी तृप्ति उँगलियों ने नीले नोटों का बंडल थाम

लिया । मेरी जीत का धन ६४० क्राउन था । उन नोटों को झपट कर मैंने खिड़की छोड़ दी ।

मेरा पहला विचार इस धन को दाँव पर लगा कर उसे और कई गुना बढ़ा लेने का हुआ । मेरा अखबार कहाँ गया ? उफ् ! बड़ी आफत है, मैंने तो उसे फेंक दिया । मैं दूसरा खरीदने की बात सोच ही रहा था कि मैं यह देख कर सन्न रह गया कि सब लोग बाहर की ओर चले आ रहे हैं, सारी खिड़कियाँ बन्द हो चुकी थीं । झंडियाँ लपेटी जा रही हैं । उस दिन की दौड़ें समाप्त हो चुकी थीं । एक-दो सैकिड के लिए मैं स्तब्ध खड़ा रहा । तब अन्याय की भावना द्वारा जनित भयानक क्रोध मेरे मन में उबल पड़ा । जिस समय मेरे समस्त स्नायु झंकृत हो रहे थे, और वर्षों बाद इतनी तेज़ी से मेरी रगों में खून दौड़ना शुरू किया था, ठीक उसी समय खेल बन्द हो जाना बड़ा अन्यायपूर्ण है । शायद देखने में मुझसे कोई गलती हुई है ।

लेकिन इस बात से मैं अपने को अधिक देर तक धोखे में नहीं रख सका, क्योंकि भीड़ कम होती जा रही थी, और रौंदा हुआ घास का लम्बा चौड़ा मैदान अब दिखाई देने लगा था, केवल गिने चुने लोग घूम रहे थे । धीरे-धीरे मैं समझ गया कि अब तनावपूर्ण स्थिति की आशा बेकार है और मैं भी बाहर जाने के फाटक की ओर बढ़ा ।

एक नौकर गिड़गिड़ाता-सा लपक कर आया। मैंने उसे अपनी गाड़ी का नम्बर दे दिया, उसने हाथ हिलाकर आवाज़ लगायी, और थोड़ी देर में मेरा गाड़ी वाला चाबुक फटकारता हुआ भीड़ में से निकल आया। मैंने उससे बड़ी सड़क पर हो कर धीरे-धीरे चलने को कहा। मेरा जोश ठंडा होता जा रहा था, उसका स्थान एक सुखद शिथिलता ले रही थी। शुरू से आखिर तक के दृश्य को मैं अपने दिमाग में दुहराना चाहता था।

इसी समय एक और बग्घी मेरे पास से निकली। मैंने उसकी ओर देखा और फौरन मुँह फेर लिया। इस गाड़ी में वही स्त्री अपने स्थूलकाय पति के साथ बैठी थी। वे लोग मुझे नहीं देख पाए, लेकिन उनकी ओर देख कर मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे मेरा दम घुट रहा हो, जैसे मैं पकड़ लिया गया होऊँ। उनकी निकटता ने मुझे बेचैन कर दिया।

बग्घी अपने खर लगे पहियों पर लम्बी क़तार में बिना आवाज़ के चली जा रही थी। बैठी हुई स्त्रियों के रंगविरंगे वस्त्रों के कारण ये गाड़ियाँ ऐसी लग रही थीं, जैसे फूलों से लदी नावें नहर में चली जा रही हों, जिसके दोनों किनारे घास से हरे-भरे हों और उन पर चैस्टनट के वृक्ष खड़े हों। सुहानी हवा चल रही थी, संध्याकालीन शीतलता की प्रथम श्वास धूल पर से प्रवाहित हो रही थी। लेकिन बीती हुई मधुर तल्लीनता फिर नहीं लौटी। जिस आदमी को आज मैंने

लूट लिया था उसको देखने से बेचैनी हो रही थी, इससे मेरा उत्लास ठंडा हो गया था। स्थिर चित्त होकर मैंने सारी घटना को तौला, और अपने ही कामों को समझना मुझे असम्भव-सा लगा।

मुझसे, एक अफसर से, एक संभ्रांत व्यक्ति से ऐसा काम कैसे बन पड़ा ? अभाव के दबाव के बिना ही मैंने दूसरे का रुपया हड़प लिया था, और वह भी इस उत्लास के साथ, जिससे मेरा व्यवहार सर्वथा अक्षम्य हो गया था। मैं, जो एक घंटा पहिले तक कभी भी सव्यवहार की सीमा के बाहर नहीं गया था, अब सचमुच चोर बन गया था। मानो अपने आपको भयभीत करने की इच्छा से, अपने ऊपर अपराध लगा कर मैं घोड़ों की टापों की लय में बड़बड़ाने लगा—

“चोर ! चोर ! चोर ! चोर !”

अब जो कुछ घटित हुआ उसे मैं कैसे व्यक्त करूँ ? वह इतना दुर्बोध्य, इतना आश्चर्यजनक प्रतीत होता है, फिर भी मुझे विश्वास है कि पूरी घटना मुझे पूरी तरह सही तौर पर याद है। इस थोड़े से काल की मेरी अनुभूति का प्रत्येक भाग, मेरे विचार का प्रत्येक स्पंदन, असाधारण स्पष्टता से मेरे मन में आ जाता है। मेरे पैंतीस वर्ष के जीवन की कोई भी घटना मेरे दिमाग में इतनी स्पष्ट नहीं है। साथ ही अनुभूतियों के उस प्रवाह को, उसकी भयानक उथल-पुथल को लेख-बद्ध करने का साहस मुझमें नहीं। मैं नहीं समझता कि कोई भी

कल्पनाशील लेखक, कोई भी मनोविश्लेषणकर्त्ता इनको न्याय-क्रम से रख सकता है। मैं केवल इतना ही कर सकता हूँ कि सारे घटना-चक्र को सही-सही रेखांकित कर दूँ।

मैं अपने मन में बार-बार चिल्ला रहा था, 'चोर ! चोर ! चोर !' इसके बाद इसमें एकाएक विराम आ गया, एक अन्तराल जिसमें कुछ भी घटित नहीं हुआ, जिसमें (कितना कठिन है यह समझाना।) मैं केवल सुनता रहा, अंतस् में ही सुनता रहा। मैंने अपने ऊपर स्वयं ही दोषारोपण किया था और अब अपराधी का प्रतिवाद करने का समय आ गया था। मैं सुन रहा था, लेकिन कुछ भी नहीं हुआ। मैंने समझा था कि यह शब्द 'चोर' मुझे कड़क के समान भयभीत कर देगा, शर्म से मेरा सिर झुका देगा, लेकिन ऐसा कोई असर नहीं हुआ। कुछ क्षणों तक मैं मानों अपने आप पर झुका हुआ धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करता रहा ताकि मैं अधिक अच्छी तरह देख सकूँ (क्योंकि मैं विश्वस्त था कि इस कठोर शांति के नीचे कुछ हलचल होगी ही।)

बड़ी आकुलता से मैं एक प्रतिध्वनि की, वेदना, क्रोध, निराशा की एक पुकार की प्रतीक्षा करता रहा जो इतने गंभीर दोषारोपण के प्रतिवाद में अवश्य उठेगी। लेकिन कुछ भी नहीं। कोई उत्तर नहीं। एक बार फिर मैंने मन में दुहराया, 'चोर, चोर।' इस बार काफी जोर से कहा था कि मेरा अंतःकरण जाग जाए, लेकिन अंतःकरण तो जैसे बहरा हो गया था। अब भी कोई जवाब नहीं। सहसा बिजली की तरह

मेरी चेतना कौंधी और मैंने अनुभव किया कि मैं लज्जित होने की केवल चेष्टा मात्र कर रहा था, वास्तव में तनिक भी लज्जित नहीं था—अपने इस कुकृत्य पर ।

किन्तु यह कैसे हो सकता है ? मैं निश्चय ही अपने आप से डर गया था और इस अप्रत्याशित अनुभूति को हटाने की कोशिश कर रहा था, लेकिन वह भाव, जिसका मैं अभी वर्णन कर चुका हूँ, अदम्य था । मेरे अन्दर कहीं लेशमात्र भी लज्जा नहीं, क्षोभ नहीं, आत्म-ग्लानि नहीं । यह प्रचंड भाव-धारा उल्लास की थी, प्रमत्त आनन्द की थी, जो मेरे अन्दर घघक उठी थी क्योंकि मैंने वर्षों के अन्तराल के बाद प्रथम बार इन क्षणों में फिर अपने को वास्तव में सजीव महसूस किया था । यह जान कर मुझे सुख हो रहा था कि अभी तक मेरी भावना को केवल लकवा मार गया था, वह एकदम निर्जीव नहीं हुई थी, मेरे मन की उदासीनता की शांत सतह के नीचे कहीं वासना का ज्वालामुखी अब भी अवश्य घघकता रहा होगा, और आज शाम को संयोग की जादू की लकड़ी का स्पर्श पाकर वह ज्वालामुखी मानो एकदम भड़क उठा था । मेरे भीतर, हाँ, मेरे भीतर भी, सजीव सृष्टि के उस अंश के भीतर, जिसे मेरे नाम से पुकारा जाता था, हमारे क्षण-भंगुर जीवन की रहस्यमयी प्राण-ज्वाला अभी तक सुलग रही थी जो समय-समय पर वासना के सशक्त स्पन्दन में प्रकट हो जाती है । मेरा भी अस्तित्व था, मैं भी सजीव था, दुष्ट और उद्दाम वासनाओं से भरा-पूरा मानव था ।

इस आवेग के तूफान ने मानो एक द्वार तोड़ कर खोल दिया था, जैसे मेरे अन्दर एक पाताल फूट पड़ा था और मैं वासनाभिभूत हो कर भय-मिश्रित आनन्द से इस अज्ञात अतल में झाँक रहा था । क्रमशः ज्यों-ज्यों मेरी गाड़ी मेरे मंत्र-मुग्ध शरीर को लादे इस मार्ग पर इस सम्मानित समुदाय में आगे बढ़ने लगी, त्यों-त्यों मैं अपने भीतर के मानव की गहराई में सीढ़ी-दर-सीढ़ी उतरने लगा, इस निस्तब्ध ढाल पर नितांत एकाकी, अपनी नवप्रज्ज्वलित चेतना की जलती हुई मशाल के आलोक के सहारे । जिस समय हज़ारों व्यक्ति मेरे चारों ओर हँस-खेल रहे थे, उस समय मैं अपने अन्दर उस मानव को ढूँढ निकालने की चेष्ट कर रहा था जो इतने समय से अंतर्धान हो गया था, चिंतन के जादूभरे पथ से वर्षों के समय को पार कर रहा था बहुत समय पूर्व दफनाई हुई स्मृतियाँ मेरे मतिष्क की मकड़ी का जाला लगी दरारों से निकलने लगीं ।

मुझे याद आया कि अपने स्कूल के दिनों में एक बार मैंने किसी लड़के का चाकू चुरा लिया था; यह भी याद आया कि जिस समय मैं उसको बड़ी बेचैनी से इस चाकू को सब जगह ढूँढते और साथियों से इसके बारे में पूछते देख रहा था, उस समय भी मेरे मन में वही शरारत-भरी खुशी लहरा रही थी, जिसका अनुभव मैंने आज शाम को किया था । अब, आखिर अपने प्रेम के कुछ अनुभवों की विचित्र गहनता को मैं समझ सका । अब मैं समझ सका कि मेरी मनोवासना सामा-

जिक भ्रांति और कुलीनता के प्रबल आदर्श के कारण केवल विकृत हो कर रह गयी थी, बिलकुल दमित नहीं हुई थी । दूसरों की भ्रांति मेरे अन्तर में भी, जीवन की यह उष्ण अंतः सलिला सारे समय गहराई में छिपी हुई बहती रही थी, अवरुद्ध नहीं हुई थी ।

हाँ, मैं जिन्दा था, फिर भी जिन्दा रहने का साहस मैंने नहीं किया था, मैंने अपने को बन्दी बना रखा था, अपने को स्वयं से छिपा रखा था । अब वह विरुद्ध शक्ति-धारा फूट पड़ी थी, शब्दातीत वेग से छलछलाता हुआ जीवन मुझे बहा ले गया था । मुझे ज्ञात हो गया था कि मैं अब भी जीवित हूँ । गर्भस्थ शिशु के हिलने-डोलने का प्रथम बार अनुभव करने वाली नारी की सुखद व्यग्रता के साथ मैं प्रथम बार अपने भीतर अंकुरित होते हुए जीवन की वास्तविकता का, उसके निर्विवाद सत्य का अनुभव कर रहा था । मुझको ऐसा प्रतीत होने लगा कि (इस अभिव्यंजना में मुझे कुछ लज्जा सी आ रही है ।) मैं जो अभी तक मुरझा रहा था, मर रहा था, फिर से फूलने लगा । मैं अनुभव करने लगा कि मेरी घमनियों में नया लाल रक्त दौड़ रहा है, और यह कि इन नए फूलों में फिर से नए, अज्ञात, मीठे और कड़ुए दोनों ही प्रकार के फल लगेंगे । टैन हाउज़र के पुष्पवान डंडे का चमत्कार मेरे अंतस् में घटित हुआ था, एक रेस के मैदान में हज़ारों निठल्ले लोगों के बीच । फिर एक बार मैं महसूस

करने लगा था; सूखे डंडे में कुल्ले फूटने लगे थे; वह नई कलियाँ दे रहा था ।

पास से गुजरती हुई एक गाड़ी में से किसी ने मेरा नाम लेकर जोर से आवाज़ दी—जाहिर था कि उसके पहिले और धीमे अभिवादन पर मेरा ध्यान नहीं गया था । इस सुखद आत्म-तन्मयता से, जीवन के गहन-तम दिवास्वप्न से जगाए जाने पर मैं झुंझला उठा । लेकिन अपने मित्र की ओर देख कर मैं फिर सहज हो गया । वह मेरा लंगोटिया यार 'अल्फोज़' था, जो अब सरकारी वकील हो गया था । एक विचार मेरे मस्तिष्क में विद्युत-गति से दौड़ गया—“यह व्यक्ति जो इतनी हादिकता से तेरा अभिवादन कर रहा है, अब तू इसी के हाथ में है । यदि इसे पता लग जाए कि तू क्या कर बैठा है, तो तेरी गर्दन इसी के हाथ में होगी । यदि वह जान जाए तो उसका यह कर्तव्य होगा कि तुझे इस गाड़ी में से निकाल कर, तेरे सुखमय अस्तित्व के बीच से घसीट कर कई वर्षों के लिए जेल में निकृष्टतम लोगों के साथ बंद करा दे, उन दूसरे चोरों के साथ जिन्हें गरीबी की मार इस दुर्दशा तक खींच लाई है ।

किन्तु यह बेचैनी केवल क्षणिक ही थी । शीघ्र ही यह विचार एक तीव्र भावना में, एक बड़े-चढ़े उद्धत गर्व में परिवर्तित हो गया, जिसके कारण मैं अपनी दृष्टि में आने वाले सभी लोगों को लगभग घृणापूर्वक तौलने लगा, “यदि तुम्हें

पता लग जाता तो तुम्हारी यह सौजन्यपूर्ण मुस्कराहट जिससे तुम अपना समानशील सभझ कर मेरी अभ्यर्थना करते हो, तुम्हारे ओठों पर जमी रह जाएगी और तुम तिरस्कारपूर्वक मुझसे कतरा कर निकल जाओगे । मैं अभी तक तुम्हीं लोगों के बीच रहा हूँ । आज मैंने तुम्हारे उस नीरस, पथराए हुए संसार से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है, जिसकी विराट मशीन का मैं एक मूक चक्का बन कर लगा हुआ था, निकम्मे पहियों में से एक । मैं एक अज्ञात गह्वर में कूद पड़ा हूँ, और तुम्हारे सुरक्षित वृत्त में रहने के सम्पूर्ण काल की अपेक्षा इस छलांग के पिछले एक घण्टे में मैं कहीं अधिक सजीव होकर रहा हूँ । अब मैं तुम्हारा नहीं हूँ । अब मैं तुम्हारे समाज का नहीं हूँ । चाहे मैं ऊँचाई पर चढ़ गया होऊँ, या गर्त में गिर गया होऊँ, किन्तु अब मैं तुम्हारे नीरस सुख-साधनों की निर्जीव सतह पर लौटने का नहीं । जीवन में प्रथम बार मैंने उस उल्लास का अनुभव किया है जो आदमी को अच्छाई में और दुष्टता में मिलता है । किन्तु तुम कभी यह नहीं जान सकोगे कि मैं कहाँ पहुँच चुका हूँ; तुम मुझको कभी नहीं समझ सकोगे । मेरे-रहस्य की गहराई तक तुम कभी नहीं पहुँच सकोगे ।”

मैं, जो अपने बाह्य रूप में भी प्रचलित ठाट-बाट का आदमी दिखता था, और अपनी श्रेणी के लोगों से शांतिपूर्वक बुआ-सलाम करता चला जा रहा था, मैं इस समय के अपने मनोभावों को कैसे व्यक्त करूँ । यद्यपि मेरा ऊपरी खोल, उसी—पुराने व्यक्ति का ही सदृश रूप, इस प्रकार एक

जमाने के अपरिचितों को पहचानता जा रहा था, तथापि मेरे अंतस् में एक इतना मादक संगीत उमड़ रहा था कि मुझे अपनी बागडोर खूब कस कर खींचनी पड़ रही थी, जिससे मैं अपने उल्लास में चिल्लाने न लगूँ। भावावेग इतना प्रचंड था कि शारीरिक वेदना का अनुभव होने लगा। किसी ऐसे व्यक्ति की भाँति जो साँस लेने के लिए भड़भड़ा रहा हो, मैंने अपना हाथ हृदय पर रख लिया था और उसके पीड़ाजनक स्पन्दन का अनुभव कर रहा था। किन्तु वेदना और आनन्द, आशंका, ग्लानि या चिंता आदि एकाकिनी और असम्बद्ध अनुभूतियाँ नहीं थीं। वे सब सम्पूर्णतः सन्निविष्ट थीं और इन सबका योग थी यह अनुभूति कि मैं जीवित हूँ, साँस लेता हूँ, महसूस करता हूँ। यह सबसे सहज, सबसे आदिम भावना थी, जिसका अनुभव मैंने बरसों से नहीं किया था, और शराब की तरह इसका नशा अब मेरे ऊपर चढ़ गया था। अपने जीवन के पैंतीस वर्षों में एक क्षण के लिए भी मैंने इतना विमोर हो कर अपनी सजीवता का अनुभव नहीं किया था।

कोचवान ने रास खींची और गाड़ी एक झटके के साथ रुक गई। उसने घूम कर मुझसे पूछा क्या मैं अब लौटना चाहता था। अपने दिवास्वप्न से जाग कर मैं सड़क पर आगे पीछे देखने लगा। मुझे यह देख कर विस्मय हो रहा था कि मैं कितनी देर से स्वप्न देख रहा हूँ और मेरी ज्ञानेन्द्रियों की मादकता ने घंटों का समय निगल लिया है। रात हो चली थी, वृक्षों के शिखर बयार में फुसफुसा रहे थे, शीतल पवन

मैं चेस्टनट के फूलों की भीनी सुगंध महक रही थी। पत्तों में से रुपहले चाँद की झलक आ रही थी। अब घर लौटना असम्भव था, उसी पुराने रूढ़िगत संसार में लौटना असम्भव था।

मैंने गाड़ी का किराया दे दिया। दाम गिनते समय नोटों को छूते ही लगा जैसे मेरी बाँह में बिजली का झटका लग गया हो; मेरे अन्दर मेरे जीवन के पुराने बाह्यावरण के अवशेष अब भी मौजूद थे, जो लज्जित हो सकते थे। मेरी मृत-प्राय 'भद्र' मनोवृत्ति अब भी मेरे भीतर जीवित थी। तो भी चोरी के इस धन का स्पर्श अब उतना कष्टप्रद नहीं था और मैं आनन्द से, खुल कर यह धन लुटाने लगा। कोचवान ने इतना उन्मुक्त होकर धन्यवाद दिया कि मैं इस विचार पर अपनी मुस्कराहट न रोक सका कि, 'केवल यदि तुम्हें मालूम होता।' उसने चाबुक फटकारा और गाड़ी हाँक दी। मैं पीछे से गाड़ी की ओर ऐसे देख रहा था जैसे कोई यात्री जहाज पर से उस भूमि के पीछे छूटते हुए किनारे को देखता है जिस पर उसने बड़े सुख के दिन बिताए हैं।

थोड़ी देर तक मैं चिन्ता-मग्न खड़ा रहा। इसके बाद टहलता हुआ मैं 'सेंचर गार्डन' की ओर चल दिया जहाँ मैं 'प्रेटर' में घूमने के बाद भोजन किया करता था। निस्संदेह इसी कारण से गाड़ीवान ने यहाँ गाड़ी रोक दी थी। किन्तु जैसे ही इस खुले भोजनालय के फाटक पर पहुँच कर मैंने

घंटी के बटन पर हाथ रखा तो विचार ने एकदम पलटा खाया । मैं उसी परिचित संसार में फिर से नहीं लौटना चाहता था । सामाजिक रूप से समानशील व्यक्तियों की व्यर्थ की बातचीत से इस आश्चर्यजनक, इस रहस्यमय उफान के नष्ट हो जाने का भय था—यह मुझे आज शाम की अनुभूतियों के झिलमिलाते जादू से कहीं अलग न कर दे ।

कहीं दूर से संगीत के अंश आ रहे थे, और ये अव्यवस्थित स्वर मुझे मुग्ध कर रहे थे, क्योंकि उस दिन प्रत्येक मोहक वस्तु मुझे अपनी ओर आकर्षित कर रही थी । मेरी मनोदशा उस समय ऐसी ही थी कि संयोग की धाराओं में बहने में आनन्द आ रहा था । यहाँ की भीड़भाड़ में भटकने में असाधारण आनन्द था । मैं उफनते हुए जनसमुदाय में उफन रहा था । धूल, तम्बाकू, मानवीय श्वास और पसीना मिली हुई गंध से मानो मेरी समस्त ज्ञानेन्द्रियों में गति पैदा हो गई थी । प्रत्येक वस्तु जो अभी तक, कल तक, अभद्र और गँवारू (और इसीलिए कुत्सित) प्रतीत होती थी, प्रत्येक वस्तु जिससे दूर रहना ही मुझे सिखाया गया था, अब मेरी स्वाभाविक, प्रवृत्तिमूलक, उत्कण्ठा का लक्ष्य बन गई थी, मानो जीवन में प्रथम बार मुझे प्राणी से, आवेगमय से, साधारण से, अपनी आत्मीयता का उद्भास हुआ हो ।

यहाँ, नगर के इस छोर पर, मामूली सिपाहियों, नौकरानियों, और आवारा लोगों के बीच मैं अपने आपको अनिर्वच-

नीय रूप से सहज पा रहा था । इस नए वातावरण में प्रमुदित होकर मैं साँस ले रहा था, भीड़ में मिल कर कंधों से कंधा रगड़ने में मुझे आनन्द आ रहा था, और बड़ी लालसा से मैं यह जानने की प्रतीक्षा कर रहा था कि मेरी बहक मुझे कहाँ ले जाती है ।

जैसे-जैसे मैं 'वर्स्टल प्रेटर' की ओर बढ़ने लगा, वैसे-वैसे पीतल के वाद्य-वृंद का नाद उग्रतर होता गया; यह नाचने वालों की एकरस ध्वनियों, दूकानों से आने वाले अजीब शोर-गुल, हँसी के ठहाकों और मदमत्त चीखों से मिल गया था । घूमते हुए चरख, चमकती हुई रोशनी में, मुझे पेड़ों में होकर दिखाई पड़ रहे थे । इस सारी धमाचौकड़ी को मानो मैं पी रहा था । कोलाहल का यह निर्झर, यह गुल-गपाड़ा मेरे प्रति कृतज्ञ था । ऊपर-नीचे जाते हुए चर्खों में झूलती हुई लड़कियों को मैं देख रहा था, उनके घाँघरे हवा में लहरा रहे थे । झूले की प्रत्येक लहर पर उनके मुँह से स्वाभाविक चीख निकल जाती थी । कसाइयों के लड़के ताकत आजमाने की मशीनों पर अट्टहास कर रहे थे, जोकर दरवाजे पर खड़े, बंदरों की तरह कूद-फाँद कर रहे थे और बाजों की आवाज़ को भी बुबा देने का प्रयास कर रहे थे ।

यह सब पीतल के वाद्य-यंत्रों, जगमगाती हुई रोशनी और अपनी ही धमाचौकड़ी की सस्ती शराब के नशे में चूर भीड़

की आपाधापी में बेतरतीब ढंग से मिल गया था । अब क्योंकि मैं जाग गया था तो मैं भी इन दूसरे लोगों के जीवन में प्रवेश कर सकता था, इस महानगर की प्रत्येक ललक में भाग ले सकता था, इसके राविवासरीय उल्लास में, इसके पशुवत् किन्तु स्वस्थ और प्रवृत्तिमूलक मनोरंजन में शरीक हो सकता था । इस कोलाहलपूर्ण जीवन के, इस उष्ण और वासनामय शरीरों के सम्पर्क के द्वारा उनके उल्लास के एक अंश का मेरे अन्दर भी संचार हो गया । मेरे स्नायुओं को इस तीखी गंध से शक्ति मिली, मेरी ज्ञानेन्द्रियाँ इस हुल्लड़ में विलास करने लगीं, मुझे इस इंद्रिय-जनित हर्षातिरेक का अनुभव होने लगा जो प्रत्येक आनन्द से अविभाज्य होता है । इससे पूर्व, शायद, कभी भी इस प्रकार जनसमुदाय से मेरा संसर्ग नहीं हुआ था । कभी भी उन्मुक्त मानवता का पुंजीभूत शक्ति के रूप में इस प्रकार बोध नहीं हुआ था, जिसमें से मेरे अपने पृथक् व्यक्तित्व में आनन्द की धारा प्रवाहित हो सकती ।

अब सारे व्यवधान टूट चुके थे और इस विस्तृत संसार की रक्त-धारा से मेरे व्यक्तिगत संचार का संयोग हो गया था । अब अपने और इस विस्तृत जीवन-धारा के बीच की अन्तिम रुकावट को भी उखाड़ फेंकने की इच्छा मेरे ऊपर सवार हो गई, इस उष्ण और अपग्णित और प्रचुर मानव-समाज से समागम की लालसा मेरे मन में भर गई । पुरुषोचित वासना से मैं इस विराट आकृति की देह के प्रति लालायित हो उठा, और स्त्रियोचित वासना से मैं इसके समस्त

चुम्बन-आलिंगन को अंगीकार करने और इसके प्रत्येक सम्मोहन में बँध जाने को प्रस्तुत हो गया । हाँ, (अब मुझको इसका उद्भास हो गया था) मैं प्रेम करता था और प्रेम पाने की आकांक्षा मेरे मन में थी, ठीक वैसी ही जैसी कि किशोरा-वस्था से युवास्था में पदार्पण करते समय मेरे मन में विद्यमान थी । मैं जीवन के लिए अकुला रहा था, इन लोगों की खिलखिलाती हुई, प्राणवान उमंग से संयोग के लिए, उन्हीं के रक्त-मांस से ऐक्य स्थापित करने के लिए । इस जमघट में नगण्य और अज्ञात होना ही यथेष्ट था, संसार के असंख्य प्राणियों के समूह में सजीव जीवन का एक अल्पातिअल्प कण होना ही यथेष्ट था । जब तक इस जीवन में हूँ, इसका अंश हूँ, दूसरों के साथ इस वृत्त में चक्कर काटता रहता हूँ, तब तक मेरे लिए यथेष्ट है; किसी असंपृक्त शक्ति से अनुप्राणित पार्थक्य के किसी आकाश की ओर उड़ कर जाते हुए किसी तीर की भाँति अब मैं इससे विलग नहीं होऊँगा—यही यथेष्ट होगा ।

भलीभाँति जानता हूँ कि मैं नशे में था । मेरे चारों ओर के वातावरण के सभी प्रकार के प्रभाव मेरे रक्त में क्रियाशील थे : चर्खी की घंटियों की टनटनाहट, अपने साथियों द्वारा पकड़ लिए जाने पर स्त्रियों की वासनामय खिलखिलाहट, संगीत का कोलाहल, वस्त्रों की सरसराहट । मेरी कनपटी, मेरी उँगलियों के छोरों में स्पन्दन हो रहा था । मैं बोलने को, घंटों की चुप्पी तोड़ने को तड़पने लगा । मानव-व्यवहार

की इतनी तीव्र लालसा मेरे मन में पहले कभी नहीं आई थी जितनी कि मैं अब इस उमड़ती हुई भीड़ में अनुभव कर रहा था, जिसमें मैं अभी तक समा नहीं पाया था। मैं उस आदमी की तरह था जो सागर में प्यासा मर रहा हो। मेरी पृथकता की तड़प प्रतिक्षण बढ़ती जा रही थी और मैं अजनबी लोगों को देख रहा था, जो एक-दूसरे के लिए भी अजनबी थे, जो दलों में भिल जाते थे और पारे की बूंदों के समान फिर अलग-अलग हो जाते थे।

जब मैं यह देखता था कि नवयुवक क्षण-भर में ही लड़कियों से जान-पहचान कर लेते थे और अगले ही क्षण बाहों में बाहें डाल कर उनके साथ घूमने लगते थे, मेरा मन ईर्ष्या से भर जाता था। चर्खे पर से एक शब्द, पास से गुजरते हुए एक चितवन ही पर्याप्त होती थी : अपरिचित लोग बातचीत करने लगते थे और शायद एक-दो मिनट के बाद ही अलग भी हो जाते थे, किन्तु इसी बीच विचारों और भावना का एक सम्मिलन, एक आदान-प्रदान हो जाता था, जिसके लिए मेरी आत्मा तड़प रही थी।

एक मैं था, जो सर्वोच्च समाज में अत्यन्त सहज-भाव से विचरण किया करता था, जिसे अच्छा सम्भाषणकर्ता माना जाता था, जो सामाजिक खेल के सारे नियम-उपनियम जानता था—तो भी मैं झेंप रहा था, शर्मा रहा था, किसी गोल-मटोल नौकरानी तक से बात करने में डर लगता था कि कहीं वह

मेरी खिल्ली न उड़ाने लगे । जब कोई मेरी ओर देखता था तो मैं नज़र नीची कर लेता था, हालाँकि बातचीत करने को लालायित था । मेरी मनोकामनाएँ स्पष्ट, नहीं थीं लेकिन एक बात का मुझे पक्का विश्वास था, और वह यह कि अकेला रहना, अपनी ही व्याकुलता में जलना मुझसे अब और ज्यादा बर्दाश्त नहीं होगा । तो भी कोई मुझसे बोला, नहीं, सब लोग मेरी ओर ध्यान दिए बिना ही पास से निकले चले जाते थे । एक बार एक लड़का मेरे पास तक आया, लगभग बारह साल का, फटे चीथड़े पहने हुए । झूले के घूमते हुए लकड़ी के घोड़ों की ओर लोलुप दृष्टि से देखते समय उसकी आँखें बिजली की रोशनी में चमक रही थीं । वह मुँह बाए खड़ा रहा । सवारी के लिए दाम न होने के कारण वह सौभाग्यशाली सवारों की चीख-पुकार और हँसी के आनन्द से ही संतोष कर रहा था । मैं ज़ोर लगा कर उसके पास गया और उससे पूछा— (लेकिन मेरी आवाज़ क्यों काँपने लगी और उसमें अस्वाभाविकता क्यों गूँजने लगी ?)

“तुम भी झूलना चाहते हो ?”

उसने मेरी ओर देखा, वह डर गया (क्यों ? अरे क्यों ?) उसका चेहरा लाल हो गया और वह एक भी शब्द बोले बिना भाग गया । एक नंगे पैर लड़के को भी मेरी ओर से थोड़ा-सा आनन्द स्वीकार नहीं था । मेरे अन्दर अवश्य ही

कोई चीज़ असाधारण रूप से अरुचिकर होगी—यही विचार उस समय मेरे मन में आया । अन्यथा, इस भीड़ में घुलमिल जाने की क्षमता का, इस उमंगते हुए सागर में तेल-बूंद की तरह अलग उतराने का और क्या कारण हो सकता था ?

लेकिन मैंने हार नहीं मानी । एकाकी रहना अब मुझे बर्दाश्त नहीं था । पेटैण्ट लैडर के क्रीमती धूल भरे जूतों में मेरे पैर जल रहे थे, मेरा गला सूख गया था । भीड़ में होकर दाएँ-बाएँ देखने पर मुझे हरी घास के छोटे-छोटे हरे द्वीप से दिखाई दे रहे थे, जिन पर लाल मेज़पोशों से सजी मेज़ें लगी रखी थीं । वहाँ काठ की बेंचों और कुर्सियों पर दूकानदार बैठे बियर और सिगार पी रहे थे । यह मुझको आकर्षक लगा । यहाँ अपरिचित लोग साथ-साथ बैठ कर शराब पी रहे थे । इस हलचल के बीच यहाँ अपेक्षाकृत शांति थी ।

मैं इन नखलिस्तानों में से एक में चला गया और विभिन्न मण्डलियों की छान-बीन करने लगा । तभी मेरी नज़र एक मेज़ पर टिक गई जिस पर पाँच व्यक्ति बैठे थे—एक हट्टा-कट्टा मज़दूर, उसकी पत्नी, दो चुलबुली लड़कियाँ, और एक छोटा-सा लड़का । वे एक-दूसरे को चिढ़ा रहे थे, हँस रहे थे और संगीत-ध्वनि पर सिर हिला कर ताल दे रहे थे । उनके प्रफुल्लित मुख देखने में भले लग रहे थे । मैंने अपना हैट उठा कर अभिवादन किया और एक कुर्सी को छूकर उस पर बैठने की इजाज़त माँगी । तुरन्त उनकी हँसी विलीन हो गई और

क्षण भर को चुप रह कर वे उत्तर देने के लिए एक-दूसरे का इतज़ार करते रहे। तब माता ने (यद्यपि उसका चेहरा भी उतर गया था) धीरे से कहा, “तशरीफ़ रखिए।”

मैं बैठ गया, यह भाव लिए हुए कि मेरे आने से इन लोगों की उन्मुक्तता खत्म हो गई है। अब मेज़ पर स्तब्धता छा गई। लाल छींट के मेज़पोश पर से, जिस पर नमक-मिर्च खूब बिखरा हुआ था, निगाह उठाने का मुझे साहस नहीं हो रहा था। किन्तु मैं समझ रहा था कि वे सभी चुपके-चुपके मेरी ओर देख रहे होंगे, और अब मेरे दिमाग़ में आया (लेकिन अब क्या हो सकता था।) कि मेरी वेशभूषा इस प्रकार के स्थान के सर्वथा असंगत थी। मेरा साफ़-सुथरा सूट, मेरा ऊँचा हैट, आसमानी टाई में मोती जड़ी पिन, मुझमें से आने वाली विलासिता की गंध, यह सब मेरी ओर मेरी मेज़ पर बैठे हुए साथियों के बीच एक गहरी खाई खोद देने को बहुत काफी था, जिसके उस पार से वे घबराहट और विद्वेष से मेरी ओर देख रहे थे।

इन पाँच प्राणियों की चुप्पी ने मेरे लिए आँख ऊपर उठाना और भी असम्भव कर दिया था। शर्म के मारे मैं अपने स्थान को छोड़ भी तो नहीं सकता था। इसलिए मैं हताश होकर वहीं बैठा-बैठा मेज़पोश के खाने बार-बार गिनता रहा। जब वेटर ने एक मोटे और भारी गिलास में

बियर लाकर दी, तब मुझे चैन मिला । अब मैं इस जगह से हट सकता था, और बियर पीते समय अपने साथियों की ओर चोरी-छिपे देख सकता था । हाँ, मैं ही उन सबकी दृष्टि का केन्द्र बना हुआ था । और उनके भाव में घृणा नहीं तो असीम अलगाव तो अवश्य ही झलक रहा था ।

वे मुझे एक उच्चका समझ रहे थे जो अनधिकृत रूप से उनके नीरस संसार में घुस आया था । अपने वर्ग की मनोवृत्ति के अनुसार वे यह अनुभव कर रहे थे कि मैं किसी ऐसी वस्तु की तलाश में हूँ, जो मुझे अपने इर्द-गिर्द नहीं मिल सकती होगी । मैं इस स्थान पर न प्रेम के कारण, न लालसा के कारण, न नृत्य या बियर के सरल आनन्द के कारण, न छुट्टी के दिन मौज मारने के लिए आया होऊँगा । उन्हें लग रहा था कि अवश्य ही मैं यहाँ किसी ऐसी इच्छा से प्रेरित हो कर आया होऊँगा, जिसको समझना उनकी बुद्धि के बाहर की बात है । और उन्हें मेरे ऊपर भरोसा नहीं हो रहा था ठीक जैसे कि उस बच्चे ने चर्ख पर झूलने के लिए पैसे देने की मेरी बात पर भरोसा नहीं किया था, और जैसे हजारों अज्ञात सैलानी लोगों को मेरी अपरिचित वेशभूषा, व्यवहार और बातचीत के ढंग पर भरोसा नहीं हो रहा था । फिर भी मुझे इस बात का निश्चय था कि यदि केवल एक बार इन लोगों से बातचीत आरम्भ करने का कोई सीधा-सादा, हार्दिक और वास्तव में मानवोचित तरीका मुझे मिल जाय तो माता-पिता

मेरी बातों का उत्तर देने लगेंगे, लड़कियाँ अनुमोदन में खिल-खिला कर हँसने लगेंगी, लड़के को मैं तीर चलाने की गैलरी दिखाने के लिए ले जा सकूंगा, या जो भी खेल उनको सबसे अच्छा लगे उसका आनन्द दे सकूंगा। दस-पाँच मिनट में ही मुझे अपने आप से मुक्ति मिल जायगी, घुलमिल कर बातचीत करने के खुले वातावरण में मैं साँस लेने लगूंगा, अच्छे साथी के रूप में ये लोग मुझे स्वीकार कर लेंगे—लेकिन मुझे शब्द ढूँढ़े नहीं मिल रहे थे, झूठी शर्म ने मेरा गला दबा रखा था, और इन सरल प्राणियों के बीच, मैं मुँह लटकाए अपराधी-सा बैठा था।

यह भावना मुझे सता रही थी कि मेरी अनपेक्षित उपस्थिति उनके रविवार के आखिरी क्षणों को बरबाद कर रही थी। भीषण स्तब्धता के इन क्षणों में, मैं उन तमाम वर्षों का प्रायश्चित्त कर रहा था, जब मैं ऐसी हजारों मेज़ों, लाखों मानव-बन्धुओं की ओर आँख उठा देखे बिना, अपने ही छैल-छबीले समाज में सफलता प्राप्त करने की धुन में लगा हुआ उद्विग्नतापूर्वक निकला चला जाता था। मैं जान गया कि आज मेरी इस आवश्यकता के समय में खुल कर बातचीत करने के रास्ते पर मेरी ओर से ही दीवार खड़ी है।

इस प्रकार मैं, जो अब तक एक स्वतंत्र व्यक्ति था, इस कातरता से सिर झुकाए बैठा रहा और मेज़पोश के खाने बार-बार गिनता रहा, जब तक कि वेटर उधर फिर से न

आ निकला । मैंने दाम चुकाए, बियर का काफी हिस्सा बिना पिये छोड़ दिया और उन लोगों से शिष्टतापूर्वक विदा माँगी । उत्तर मैत्रीपूर्ण मिला लेकिन साथ ही उसमें विस्मय का भाव भी मिला हुआ था । उनकी ओर बिना देखे ही मैं जानता था कि मेरे पीठ फेरते ही, इस बाहरी तत्व के हटते ही, इनके प्रफुल्लित वार्तालाप का सिलसिला फिर चालू हो जाएगा ।

एक बार फिर मैंने अपने आपको भीड़ के भँवर में छोड़ दिया, इस बार अधिक उत्कण्ठा से, और अधिक हताशा से । वृक्षों के काले चँदोवे के नीचे धक्कामुक्की कम हो गयी थी । जहाँ चर्ख की रोशनी पड़ रही थी, वहाँ भी भीड़ अब उतनी घनी नहीं थी । लेकिन मैदान के अँधेरे हिस्सों में, उसके किनारे-किनारे काफी आदमी दिखाई पड़ रहे थे । आमोदा-कांक्षियों की गम्भीर गर्जना अब छोटी-छोटी ध्वनियों में बँट गई थी, यद्यपि ये ध्वनियाँ, समय-समय पर, संगीत के ज़ोर से उमड़ते ही सम्मिलित हो जाती थीं, मानो हट कर जाने वालों को वापस बुलाने का प्रयास कर रही हों ।

भीड़ में अब नए तत्व स्पष्ट दिखाई पड़ रहे थे । बच्चे अपने गुब्बारों, कागज़ की पनचकियों और जहाज़ों के साथ घर पहुँचा दिए गए थे और पारिवारिक मण्डलियाँ लुप्त हो चुकी थीं । जो रह गए थे, उनमें से कुछ तो अंधाधुंध पिए हुए थे । इधर-उधर की गलियों में आवारों के दल दिखाई देने लगे थे । जितनी देर मैं उस बियर-वाटिका की मेज़ पर

चिपका बैठा रहा था, उतनी ही देर में यह विलक्षण संसार बदल कर गिर चुका था। किन्तु दुर्जनता और खतरे की यह गंध श्रमिक-वर्गीय प्रतिष्ठा के वातावरण की अपेक्षा कहीं अधिक मेरे अनुकूल थी। जो अंतर्जात प्रवृत्ति मेरे अंदर जग चुकी थी वह इन लोगों के उसी भाँति के तनाव से मेल खा रही थी। प्रतीत होने लगा जैसे इन संदिग्ध आकृतियों के, समाज के इन बहिष्कृत व्यक्तियों के, दबे-छिपे व्यवहार में मैं अपने आपको प्रतिबिम्बित देख रहा हूँ। मेरी ही भाँति वे भी किसी सजीव घटना, किसी तीव्र आवेग की तलाश में थे। चीथड़ों से ढके इन व्याधों से मुझे ईर्ष्या हो रही थी, उनकी निरंकुशता पर ईर्ष्या हो रही थी। कारण कि मैं झूले के एक खम्भे के सहारे, मौन के मंत्र-मोह को तोड़ने की, एकाकीपन के त्रास से मुक्ति पाने की लालसा लिए खड़ा था; बातचीत करने या हिलने-डोलने में सर्वथा असमर्थ। मैं खड़ा था और उस चौकोर मैदान के पार, रोशनी से जगमगाती हुई इस खुली जगह के पार अंधकार में देख रहा था, बड़ी उम्मीद से अपनी ओर आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को जाँच रहा था। लेकिन कोई मुझसे नज़र भी नहीं मिलाता। सब लोग मेरी ओर उपेक्षा भाव से देखते थे। किसी को मेरी चाह नहीं, कोई भी मुझे मुक्त नहीं करना चाहता।

यह जो पागलपन-सा प्रतीत होगा, उसके विवरण या विवेचन का प्रयास मैं किस प्रकार करूँ? मैं, एक पढ़ा-लिखा, धनी-मानी, स्वतन्त्र, राजधानी के सर्वोच्च समाज में विचरण

करने वाला व्यक्ति उस रात को पूरे एक घंटे तक खम्भे के सहारे खड़ा-खड़ा बार-बार, बीस, चालीस, सौ बार उसी वाल्ट्ज़ और पोलका के संगीत को सुनता रहा, कामदार लकड़ी के उन्हीं बेहूदे घोड़ों के चक्करों को देखता रहा—एक ज़बरदस्त ज़िद ने, भाग्य पलटने के जादू की प्रतीक्षा के निश्चय ने, मुझे उस जगह बाँध दिया था। मैं जानता हूँ कि मेरा यह आचरण एकदम बेहूदा था, किन्तु उन क्षणों का मेरा संताप एक प्रायश्चित्त था। और यह प्रायश्चित्त मेरी चोरो का नहीं था, बल्कि इस शाम तक के जीवन की नीरस शून्यता का था। मैंने क्रसम खा ली थी कि जब तक मुझे यह कृपा-चिह्न प्राप्त नहीं हो जाता कि भाग्य ने मुझे मुक्ति दे दी है, तब तक इस स्थान से नहीं हिलूंगा।

एक घंटा बीत गया, धीरे-धीरे सारे खेल तमाशे बंद हो गए। एक के बाद एक तम्बू में रोशनी बंद होने लगी, जिससे प्रतीत होता था कि अंधकार बाढ़ की तरह बढ़ता आ रहा है। जिस स्थान पर मैं खड़ा था उसका उजाला एक द्वीप की भाँति धीरे-धीरे अकेला होता जा रहा था। भड़भड़ा कर मैंने घड़ी देखी। पंद्रह मिनट और बीतते ही झूले के ये चमकीले घोड़े भी घूमना बन्द कर देंगे, उनके माथे पर झूलती हुई लाल-हरी रोशनी गुल कर दी जाएगी और चिन्घाड़ता हुआ संगीत भी बन्द कर दिया जाएगा। तब मैं ही इस अंधकार में, इस गुनगुनाती हुई रात में एकाकी रह जाऊंगा, बहिष्कृत और परित्यक्त।

अंधकार से ढँके इस मैदान के पार मैं अधिकाधिक बेचैनी से देख रहा था, जहाँ थोड़ी-थोड़ी देर बाद घर की ओर तेज़ी से जाती हुई दो आकृतियाँ दिखाई पड़ती थीं, या कभी शराब के नशे में घुत्त कोई उपद्रवी दिख जाता था। किन्तु मेरे दूसरी ओर हो गहरी छाया में एक बेचैन और स्फूर्तिप्रद जीवन दुबका हुआ था। जब कभी कोई गुज़रता था तो अंधकार में से एक फुसफुसाता हुआ आमंत्रण मुझे सुनाई पड़ता था। यदि गुज़रने वाला उत्तर में मुड़ कर देखता था तो किसी औरत की आवाज़ स्पष्ट सुनाई पड़ती थी और कभी-कभी किसी स्त्री की खिलखिलाहट हवा में उड़ कर आती थी।

धीरे-धीरे ये अंधकार-वासी, साहस करके, उजाले पर भी धावा बोलने लगे। लेकिन कहीं भी पुलिसमैन का लोहे का टोप दिखाई देते ही वे फिर अन्तर्धान हो जाते थे। पुलिस का सिपाही गश्त लगाता हुआ निकल जाता त्योंही ये छायाएँ शिकार की खोज में निकल आती थीं। और अब, जब ये उजाले में और आगे आने का दुस्साहस करने लगीं, तो मुझे व्यस्त मानव-जीवन की धारा की बची हुई गाद स्पष्ट दिखाई देने लगी। वे सबसे निम्नकोटि की वेश्याएँ थीं, जिसके घर-द्वार कुछ नहीं होता, जहाँ वे अपने ग्राहकों को ले जा सकें, वे जो अपने आपको बहुत-थोड़े दामों में किसी अँधेरे कोने में बेच देती हैं—पुलिस से त्रस्त, भूख से त्रस्त, अपने ही गुंडों से त्रस्त स्त्रियाँ जिन्हें निरन्तर शिकार की तलाश में घूमना पड़ता है। भूखे शिकारी कुत्तों की भाँति गंध

लेती हुई वे उजाले मैदान के पार मर्दानगी की ओर चली जाती थीं, किसी भूले-भटके आदमी की ओर जिसको, एक दो क्राउन के बदले, अपनी काम-वासना तृप्त करने को लुभाया जा सके । यह पैसा किसी दूकान से उन्हें शराब और रोटी के टुकड़े दिला सकेगा और इस प्रकार उनमें जीवन-ज्योति जलाए रखेगा जब तक कि उसकी लौ किसी जेल या अस्पताल में सदा के लिए बुझ न जाए ।

यही इस रविवासरोय जनसमूह की वासना की बाढ़ का कूड़ा-करकट, उसका अंतिम फेन था । अपरिचित भय के साथ मैं अंधेरे में से दबे पाँव आती हुई, भेड़ियों जैसी इन आकृतियों को देख रहा था । किन्तु इस भय में भी एक सात्विक आनन्द था, क्योंकि इस विकृत दर्पण में मुझे अपने विस्मृत अतीत के अवशेष दिखाई पड़ रहे थे । यही दलदल था जिसमें से मैं युवाकाल में गुज़रा था और इसकी मंद दलदली रोशनी मेरी ज्ञानेन्द्रियों में फिर से चमकने लगी थी । मुझे अपनी किशो-रावस्था याद आई जब मेरी दृष्टि इस प्रकार की आकृतियों पर भय और उत्कण्ठा से टिक जाया करती थी । मुझे याद आया वह क्षण जब मैं प्रथम बार इसी प्रकार की एक स्त्री के पीछे-पीछे एक गंदी, सील भरी, मचमचाती हुई सीढ़ी पर चढ़ा था । सहसा, मानो बिजली की चमक में, इस विस्तृत क्षण की प्रत्येक बात मुझे स्पष्ट उभरी हुई दिखाई पड़ने लगी, उस औरत के बिस्तर के ऊपर टंगा हुआ नीरस तैल-

चित्र, उसके गले का ताबीज; और मुझे याद आई अपनी वह बहुत पुरानी ललक जिसमें घृणा और चढ़ती जवानी के घंमड का भी पुट मिला हुआ था। अब प्रथम बार स्पष्टता से मैं समझा कि इन बहिष्कृत प्राणियों के प्रति मेरे मन में सम-वेदना का भाव क्यों जाग उठा था।

उस शाम को जिस प्रवृत्ति ने मुझे वह अपराध करने को प्रेरित किया था, उसी के कारण अब मैं इन लुटेरों के प्रति भी आत्मीयता का अनुभव कर रहा था। मेरी जेब में चोरी के नोटों से भरा बटुआ मानो मेरी छाती को जला रहा था। मुझे प्रतीत होने लगा कि उधर अंधकार में, साँस लेते हुए, बोलते हुए कुछ मानव-प्राणी हैं जो दूसरों से, शायद मुझसे, कुछ चाहते हैं—मुझसे, जो अपने आपको दे डालने के लिए उनकी प्रतीक्षा ही कर रहा था, जो अपने साथियों से मिलने को लालायित था। किस चीज़ से प्रेरित होकर लोग इन स्त्रियों के पास जाते हैं, यह मैं अब समझ गया था। केवल इंद्रियों की वासना के वशीभूत होकर इन स्त्रियों के पास वे वास्तव में कम ही जाते हैं। मुख्य प्रेरक-शक्ति होती है एकांत का भय, पार्थक्य की वह भयावह भावना जो हम एक-दूसरे से विलग कर देती है और जिसका अनुभव मैंने पूरी तौर से उस दिन किया था।

मुझको वह दिन भी याद आया, जब पिछली बार इसी चीज़ का अनुभव किया था। यह घटना घटित हुई थी इंग्लैण्ड

के मैनेचेस्टर नगर में, (उन नगरों में से एक में जो लोहे की तरह सख्त होते हैं,) जो धूसर आकाश के नीचे भूमिगत रेलवे कोलाहल से गरजा करता है, किन्तु वहाँ जाने वाले को निराट एकाकीपन की भावना सताने लगती है। उस नगर में एक बार मैं अपने सम्बन्धियों के साथ तीन सप्ताह रहा था।

मेरी शाम शराब-घरों, नाच-घरों और इसी प्रकार के स्थानों में सदा मानव-संसर्ग के आनन्द की तलाश में गुज़रती थी। एक दिन शाम को एक ऐसी ही औरत से मेरा सामना हो गया था। उसकी अभद्र भाषा मेरी समझ में नहीं आती थी। लगभग अनजाने ही मैंने अपने को उसके साथ पाया था। मैं एक परिचित मुख की हँसी का पान करने लगा। एक शरीर मुझसे सटा हुआ था, गर्म और गुदाज। ठंडा, काला नगर गायब हो चुका था, एकांत का वह गर्जन भरा घूमिल आगार अब वहाँ नहीं था। उनकी जगह एक सहचर प्राणी ने, एक अपरिचित स्त्री ने, ले ली थी जो सभी आने वालों की प्रतीक्षा करती रहती थी, और मुक्ति-दान किया करती थी। मैं एक बार फिर मुक्ति की साँस लेने लगा था और इस लोहे के पिंजड़े में भी ज़िन्दगी की चमक दिखाई देने लगी थी। एकाकी व्यक्तियों के लिए, उन व्यक्तियों के लिए जो अपने आपमें ही कैद रहते हैं, इस बात का ज्ञान कितना मूल्यवान होता है कि उनकी मुक्ति का भी कोई रास्ता है, कि कोई ऐसी चीज़ भी है जिसका वे सहारा ले सकते हैं, भले ही वह चीज़ कितनी फटी-टूटी, कितनी ही गंदी क्यों न हो।

अपने अवर्ण्य एकाकीपन के उन क्षणों में यही बात मैं भूल गया था। मैं भूल गया था कि उस अंधकार की छाया में ऐसे प्राणी मौजूद हैं, जो एक सिक्के के बदले में, जो निश्चय ही उस वस्तु के बदले में कुछ भी नहीं है, जिसे वे मानव-संसर्ग का अमूल्य उपहार देने को चिर-तत्पर रह कर, प्रदान करती हैं।

जिस चर्ख के सहारे मैं खड़ा हुआ था उसका बाजा एक बार फिर बजने लगा। यह आखिरी चक्कर था, अन्तिम बार यह घूमती हुई रोशनी अंधकार में चमकेगी और रविवार का आनन्दपूर्ण दिन फिर से नीरस कार्य-दिवसों में परिणत हो जाएगा। लेकिन इने-गिने ही चढ़ने वाले रह गए थे। टिकट देने वाली थकी-मांदी औरत दिन भर की आमदनी का हिसाब लगा रही थी; पास ही एक विचित्र-सा आदमी अपना औज़ार लिए चक्कर खत्म होते ही खड़खड़ाते हुए किवाड़ों को खींच कर बन्द कर देने को तैयार खड़ा था।

मैं एक लट्टे के सहारे खड़ा इस निर्जन मैदान के पार देख रहा था—वहाँ शिकार की तलाश में निकली हुई वे छायाएँ ही दिखाई पड़ रही थीं जिनका मैं जिक्र कर चुका हूँ। मेरी तरह वे भी आस लगाए थीं, तो भी मेरे और उनके बीच दूरी की एक दीवार खड़ी थी जिसे ढा देना मेरे बूते के बाहर था।

अब उनमें से एक की नज़र मेरे ऊपर पड़ गई होगी, क्योंकि वह मेरे पास से झिझकती हुई निकली। पलकें झुकाए ही मैंने उसकी आकृति की हरेक बात देख ली। वह छोटे कद की थी, अस्थि रोग से पंगु हो गई थी। सिर पर हैट नहीं था, घिसी-घिसाई एड़ियों वाले जूते और भड़कीले रंग के कपड़े पहने थी, जो सबके सब शायद पुराने कपड़ों की किसी दूकान से खरीदे गए होंगे और उसके पेशे में होने वाले दुरुपयोग के कारण अब और भी रद्दी हो चुके थे। वह पास ही रुक गई, ललचाने वाले भाव से उसने मेरी ओर देखा और मुस्करा कर आमंत्रित करने लगी, जिससे उसके बदसूरत दाँत दिखने लगे। मुझे साँस लेना भी कठिन हो गया। मैंने उसकी ओर न देखने का बहाना किया, लेकिन उसकी ओर से आँखें नहीं फेर पा रहा था। मानो सम्मोहित होकर मुझे यह आभास हुआ कि एक मानव-शरीर मेरे लिए लालायित है, प्रणय कर रहा था, और आखिर केवल एक शब्द से, या एक इशारे से मैं अपने घृणित अकेलेपन का, बहिष्कृत होने की यातना के भाव का, अंत कर सकता हूँ। किन्तु न तो वह शब्द ही मेरे मुँह से निकल रहा था, न मैं वह इशारा ही कर पा रहा था। लकड़ी के जिस खम्भे के सहारे मैं खड़ा हुआ था, उसके समान ही मैं जड़ हो गया था। तो भी, जिस समय झूले की ध्वनि थक कर शिथिलता से समाप्ति की ओर घिसट रही थी, उस समय मेरे प्रति अनुराग का प्रदर्शन करने वाली इस स्त्री के सान्निध्य के कारण मेरी निर्जीवता में भी आनन्द उमड़ आया

था । अपने एक सहचर प्राणी के आमंत्रण के आकर्षक सम्मोहन का रसपान करने के लिए क्षण भर को मैंने अपने नेत्र मूंद लिए ।

चर्खे ने घूमना बन्द कर दिया और इससे संगीत भी हिसहिसा कर नीरवता में डूब गया । मैंने आँखें खोलیں तो देखा कि वह औरत वहाँ से जाने लगी है । स्पष्ट था कि वह भी काठ की जड़ मूर्ति को कहाँ तक लुभाती । मैं चौंक पड़ा और सहसा एकदम ठंडा पड़ गया । उसको मैंने क्यों चला जाने दिया, उस एकमात्र मानव को जिसने इस अद्भुत रात को मेरी ओर बढ़ने की चेष्टा की थी ? पीछे बत्तियाँ गुल कर दी गई थीं और लोहे के बेलन उतारे जा रहे थे । उत्सव समाप्त हो रहा था ।

अचानक—मैं अपने मन के उफान का वर्णन कैसे करूँ ? अचानक मैं इस लालसा से अभिभूत हो गया कि यह घिसी-पिटी मरियल वेश्या किसी तरह एक बार मेरी ओर मुड़ कर देखे तो मैं उससे बात करूँ । यह नहीं कि मैं घमंड के मारे उसके पीछे नहीं जा रहा था, (मेरा घमण्ड तो चूर-चूर हो कर धूल में मिल चुका था, और उसका स्थान ऐसी भावनाओं ने ले लिया था जो मेरे लिए एकदम नयी थीं ।) केवल मेरे मन में दृढ़ता नहीं थी । मैं वहाँ खड़ा यह चाह रहा था कि यह अभागी एक बार फिर मेरी ओर मुड़े और एक बार फिर मुझे आमन्त्रित करने की कृपा तो करे ।

और वह मुड़ी । यंत्रवत् सिर घुमा कर उसने मेरी ओर नज़र डाली । तनाव की कमी स्पष्ट ही मेरी आँखों से झलक आई होगी, क्योंकि वह मेरी ओर देखने के लिए रुक गई । इसके बाद आधा घूम कर उसने सिर हिला कर इशारा किया, मैदान के अँधेरे हिस्से की ओर चलने का इशारा किया । अंत में, वह दारुण सम्मोहन जिसने मुझे बाँध रखा था, टूट गया था । अब मैं अपनी जगह से हिलने को मुक्त था, और मैंने सहमति में इशारा कर दिया ।

इस अदृष्ट संधि पर हस्ताक्षर हो चुके थे । धुंधली रोशनी में वह मैदान पार करने लगी । रह-रह कर सिर घुमा कर देख लेती थी कि मैं आ रहा हूँ या नहीं । और मैं पीछे-पीछे चला जा रहा था, खिंचता चला जा रहा था । तम्बुओं के बीच एक गली में उसकी चाल धीमी पड़ गई और मैं उसके पास पहुँच गया ।

कुछ सैकिण्डों तक वह मुझे ऊपर से नीचे तक संदेह से देखती रही । मेरी किसी चीज़ से शंकित हो उठी थी—मेरी शिक्षक तथा मेरे रूप और जिस स्थान में वह मुझे देख रही थी, उसकी असंगति से । लेकिन इस थोड़ी-सी हिचक के बाद उसने गली की ओर इशारा किया जहाँ आगे जाकर घोर अंधकार छाया हुआ था, और बोली, “चलो इधर चलें । पीछे की ओर एकदम अँधेरा है ।”

मैं कोई उत्तर न दे सका । इस स्थिति की भयावह सामान्यता ने मुझे मूक कर दिया था । मैं चाहता था कि दो-एक क्राउन देकर माफी माँग कर छुट्टी पा जाऊँ, किन्तु मेरी इच्छा-शक्ति का मेरे कामों पर कोई अधिकार नहीं रह गया था । बरफ पर सरकने वाली गाड़ी में बैठे हुए व्यक्ति को पहाड़ से ढाल के घुमाव पर तेज़ी से जाते समय सामने खड्डा दिखाई देने पर जो अनुभव होता है, वही अनुभव मुझे इस समय हो रहा था—इसमें भय और प्रखर गति के उल्लास का मिश्रण हो जाता और आदमी अपने को रोकने की चेष्टा करने के बजाय तेज़ी से गिरने के आनन्द के प्रति समर्पण कर देता है । मैं भी रुक नहीं रहा था, शायद रुक जाने की इच्छा भी मेरे मन में नहीं थी । जब वह मुझसे सटने लगी तो अनिच्छापूर्वक मैंने उसकी बाँह पकड़ ली । बड़ी पतली-सी बाँह थी, मानो किसी स्त्री की बाँह न होकर यह किसी कमज़ोर बच्चे की बाँह हो । और जब मैंने उसकी झीनी आस्तीन में उस बाँह का स्पर्श किया तो मानवता के इस पद-दलित अंश के प्रति, जो उस रात को मेरे मार्ग में आ पड़ा था, मैं करुणा अभिभूत हो गया ।

हम लोगों ने धुँधली रोशनी वाली सड़क पार की और एक उपवन में घुसे । वृक्षों के शिखर एक अशुभ अंधकार में, तन्मय होकर डूबे हुए थे । मैंने देखा कि घुसते ही उसने पीछे की ओर मुड़ कर नज़र फेंकी । कुछ क्रदम चलने के बाद उसने फिर यही किया । यद्यपि इस घटना-चक्र में पड़ते समय

यह प्रतीत होता था कि मुझे लकवा मार गया है, तो भी मेरी समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ पूरी तरह जागृत थीं। एक स्पष्टता से जिससे कुछ भी नहीं छिप सकता था, मैंने देखा कि रास्ते के किनारे-किनारे एक छाया हम लोगों का पीछा कर रही है और किसी की दवे-पाँव चलने की पग-ध्वनि भी मुझे सुनाई पड़ रही थी। पल भर में सारा भामला मेरी समझ में आ गया। मुझे बहका कर किसी ऐसे भीतरी स्थान पर ले जाया जा रहा था जहाँ वह लड़की और उसके साथ का गुंडा मेरे साथ मनमाना व्यवहार कर सके। जीवन और मृत्यु के बीच लटकते हुए व्यक्ति में जो चमत्कारी अन्तर्दृष्टि आ जाती है, उससे मैं सम्भावनाओं का हिसाब लगाने लगा। मेरे पास अब भी वापिस लौट जाने का समय था। हम लोग सड़क के पास ही थे और ट्राम की घरघराहट मुझे सुनाई पड़ रही थी। आवाज़ देने पर या सोटी बजाते ही सहायता मिल सकती थी। इस प्रकार निकल भागने की या बचाव की सभी सम्भावनाओं की उलट-फेर मेरे दिमाग में चलने लगी।

आश्चर्य की ही बात है कि इस खतरनाक स्थिति के कारण मेरी उत्कण्ठा घटने के बजाय और प्रखर हो गई। अपने इस मूर्खतापूर्ण आचरण का विवेचन करना आज मेरे लिए कठिन है। आगे बढ़ते समय भी जानता था कि मैं अकारण ही खतरा मोल ले रहा हूँ। लेकिन होनहार की इस कल्पना से मैं पुलकित हो रहा था। कोई अप्रिय घटना,

संभवतः जिन्दगी का खतरा, मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। जिस कुचक्र में मैं फँसता जा रहा था, उसका विचार ही घृणोत्पादक था। लेकिन उस समय के मतवालेपन में मृत्यु-भय से भी मुझे एक कुटिल आनन्द मिल रहा था। कौन-सी चीज़ मुझे आगे को धकेल रही थी? कायरता दिखाने में मुझे शर्म आ रही थी? या यह सिर्फ मेरी कमज़ोरी थी? मेरा ख्याल है कि जीवन की तलछट तक का आस्वादन करने की धुन मेरे ऊपर सवार थी, अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को एक ही दाँव पर लगा देने की लालसा मेरे मन में थी। यही कारण था कि जो खतरा मैं मोल ले रहा था उससे भलीभाँति अवगत होते हुए भी उस लड़की की बाँह में बाँह डाले मैं उपवन में चला जा रहा था—उस लड़की की जिसमें कोई शारीरिक आकर्षण नहीं था और जो मुझको केवल एक फँसा हुआ कबूतर समझ रही थी जिसे वह और उसका साथी नोंच डालेंगे। घुड़दौड़ के मैदान में अपने दुष्कर्म से प्रारम्भ होने वाले इस नाटक को मुझे अंत तक खेलना ही होगा, भले ही उसका पटाक्षेप मेरी मृत्यु के साथ ही क्यों न हो।

कुछ कदम चल कर वह फिर ठिठकी और उसने मुड़ कर देखा। तब आशाभरी नज़र से मेरी ओर देख कर उसने कहा :

“अच्छा, आप मुझे क्या दाम देंगे ?”

अरे हाँ, इस पहलू को तो मैं भूल ही गया था। किन्तु उसके इस प्रश्न से भी मैं सावधान नहीं हुआ। बिल्कुल नहीं। उन्मुक्त होकर दे सकने का अवसर पाकर मैं प्रसन्न था। अपनी जेब टटोलते हुए मैंने आगे बढ़े हुए उसके हाथ पर चाँदी के सभी सिक्के और कुछ मुड़े हुए नोट निकाल कर रख दिए। इसके बाद कुछ ऐसी विलक्षण बात हुई कि जब भी मैं उसके बारे में सोचता हूँ तो मेरा दिल उछलने लगता है। शायद वह मेरे दान पर चकित रह गई थी, शायद मेरी मुक्त-हस्त उदारता उसके लिए एकदम नयी चीज़ थी। जो भी हो, वह एक कदम पीछे हट गई और इस अशुभ, घने अंधकार में भी मैं अनुभव करने लगा कि उसकी प्रश्न-सूचक, चकित, दृष्टि मेरी आँखों पर जम गई है। जिस चीज़ के लिए मैं शाम से लालायित था, वह मुझे अब मिल गई। किसी को मुझमें व्यक्तिगत रूप से दिलचस्पी हो गई थी, इस नये संसार में प्रथम बार किसी के प्रति मैं वास्तव में सजीव हो उठा था। इस तथ्य से कि वह बहिष्कृतों में भी बहिष्कृता थी, एक लावारिस किस्म की लड़की थी जो अपने दीन-हीन शरीर को अंधकार में बेचती फिरती थी और कभी खरीदार का चेहरा भी नहीं देख पाती थी—कि यही जीव इस समय प्रश्न-भरी दृष्टि से मेरी ओर देख रहा था और यह समझने की चेष्टा कर रहा था मैं कैसा आदमी हूँ—इस तथ्य से मेरा उल्लास केवल घनीभूत ही हुआ था। वह मेरे पास आती गई, अपने धंधे के कारण जिस काम के लिए उसे पैसे मिल गये थे उसको पूरा करने के लिए नहीं, बल्कि मेरा विश्वास

है कि एक अचेतन कृतज्ञ-भाव से अनुप्राणित होकर, आलिंगन की नारीसुलभ इच्छा से अनुप्राणित होकर ही वह मेरे निकट-तर आ रही थी। एक बार फिर मैंने उसकी सूखी-सी दुर्बल बांह पकड़ ली। मैं उसके दुर्बल शरीर के स्पर्श का अनुभव करने लगा, और अपने मन में यह चित्र बनाने लगा कि वह क्या रही होगी और क्या है। मेरे सामने आया कि गंदी बस्ती का वह धिनौना घर जहाँ बच्चों के शोरगुल के बीच सुबह से दोपहर तक वह घड़ी-दो-घड़ी जैसे-तैसे सो लेती होगी। मेरे सामने आया उसका भड़वा जो उससे दुर्व्यवहार करता होगा, वे अभागे जो सामान्यतः उसके गाहक होते होंगे, यौन रोगों के अस्पताल में उसका जीवन, जहाँ वह कैद रहेगी, अपाहिजों का वह आश्रम जहाँ उसके आखिरी दिन बीतेगे। अपरिचित करुणा से द्रवित हो कर मैं झुका और मैंने उसका चुम्बन ले लिया। वह चकित थी।

इसी समय मेरे पीछे ही सरसराहट हुई और एक गिरी हुई शाख चटख गई। एक अट्टहास हुआ और एक आदमी की आवाज़ सुनाई पड़ी :

“ऐन मौके पर पकड़ लिया। मैंने सोचा भी यही था।”

उन लोगों की ओर देखने से पहले ही मैं समझ गया था कि वे कौन हैं। मैं यह भूला नहीं था कि मेरा पीछा किया

जा रहा है, और प्रतीक्षण मैं इस व्यवधान की उम्मीद कर रहा था। एक आकृति दिखाई पड़ी, फिर दूसरी—दो जंगली से आदमी थे। खिलखिला कर हँसने की आवाज़ आई, और फिर,

“खुले आम यह कुकर्म। और जनाब हैं भी सफ़ेदपोश। हज़रत को अभी हम चीं बुला देंगे।”

मैं निश्चल खड़ा था। मेरी कनपटी धड़क रही थी, लेकिन मैं ज़रा भी चिंतित नहीं था। मैं तो सिर्फ़ इसका इंतज़ार कर रहा था कि आगे क्या होता है। अब मैं गहरे में पहुँच गया था। जिस शिखर-बिन्दु की ओर मैं जा रहा था वह अन्ततोगत्वा आवेगा ही।

वह लड़की मुझसे दूर हट गई, लेकिन उन लोगों में शामिल नहीं हुई। वह हमारे बीच में खड़ी थी, और ज़ाहिर था कि इस नाटक में जो भूमिका उसे दी गई थी, वह उसके अनुरूप नहीं थी। मेरी उदासीनता से गुण्डों की हिम्मत टूट-सी रही थी। वे एक-दूसरे की ओर भौंचक्के-से देख रहे थे कि न तो मैं घबरा रहा था और न छुटकारा पाने के लिए गिड़गिड़ा ही रहा था। अंत में उनमें से एक मुझको धमकाते हुए चिल्लाया—

“अब कैसा मुँह बन्द हो गया ?

दूसरे ने एक क़दम आगे बढ़ कर हुक़म दिया :

“तुम्हें हम लोगों के साथ थाने चलना होगा ।”

फिर भी मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया । मेरे पास वाले आदमी ने मेरा कंधा छूकर हलका-सा धक्का दिया—

“चलो आगे ।”

जो भी हुक़म मिला मैंने किया—प्रतिरोध का कोई प्रयास नहीं किया । मैं जानता था कि स्वयं वे दोनों पुलिस से मुझसे भी अधिक डरते थे । मैं यह भी जानता था कि चंद सिक्के देकर छुटकारा पा सकता हूँ । लेकिन मैं तो इस स्थिति के सारे भयानक मज़े चखना चाहता था । धीरे-धीरे, यंत्रवत्, मैं उस दिशा में चलने लगा, जिसका उन्होंने इशारा किया था ।

लेकिन इस स्थिति को इस प्रकार स्वीकार कर लेने पर, उजाले की ओर लौटने को राज़ी हो जाने पर, मेरे त्रासक चक्कर में पड़ गए ।

“हिश ! हिश !”—पीछे से उन्होंने आपस में इशारे किए । फिर ज़ोर की आवाज़ बना कर बोलने लगे :

“जाने भी दो, भिखमंगे को,” चेहरे पर चेचक के दाग वाले नाटे आदमी ने कहा ।

दूसरे ने अधिक कठोर नैतिकता के स्वर में कहा, “नहीं, नहीं, इससे काम नहीं चलेगा। अगर वह हमारी तरह का भुक्खड़ होता जिसके पास अपना दोज़ख भरने के लिए रोटी का एक टुकड़ा भी न होता, तो उसको फौरन जेल में बन्द कर दिया जाता। इन बाबू साहब को हम बेदाग नहीं छोड़ सकते।”

इन शब्दों में, इस स्वर में एक बेढंगा आमंत्रण था कि मैं सौदा करने लगूँ। मेरे अंतर के अपराधी ने उनके भीतर के अपराधी की बात समझ ली। मैं जानता था कि वे मुझे डराना चाहते हैं और यह कि मेरी तत्परता के कारण वे स्वयं भयभीत हो गए हैं। मेरे और उन दोनों के बीच एक मूक द्वंद्व चल रहा था। कितना शानदार था यह। सिर पर मँडराते हुए खतरे में, इस गंदे कुंज में, इस तरह दो गुंडों और एक वेश्या द्वारा घिर जाने पर, पिछले बारह धंटों में दूसरी बार मैंने खतरे के जादूभरे आकर्षण का अनुभव किया। लेकिन इस बार दाव ज्यादा गहरा था, ज़िन्दगी ही दाव पर लगी हुई थी। इस विचित्र खेल में मैंने अपने आपको सम्पूर्णतया विसर्जित कर दिया था। पासा पड़ने का इंतज़ार कर रहा था।

उनमें से एक बोला, “लो सिपाही आ रहा है, अब इन बाबू साहब को मज़ा चखना पड़ेगा। कम से कम एक हफ़्ते तो जेल की हवा खानी ही पड़ेगी।”

यह बात मुझको डराने के इरादे से कही गई थी, लेकिन जिस तरह यह बात कही गई थी उससे मैं समझ गया कि कहने वाला स्वयं भी निश्चित नहीं है। मैं आत्मविश्वास के साथ रोशनी की ओर बढ़ते लगा। यहाँ से अब मुझे सिपाही के लोहे की टोप की चमकती हुई कलगी दिखाई देने लगी। बस बीस कदम और, हम उसके पास पहुँच जाएँगे। मेरे पीछे-पीछे चलने वालों के पास अब कहने के लिए कुछ भी नहीं रह गया था।

अब वे पिछड़ने लगे थे और यह निश्चित था कि पल भर में ही अंधकार में विलीन हो जाएँगे। असफलता हाथ लगने पर मन में कटुता भरे हुए वे अपने ही संसार में लौट जाएँगे और अपना गुस्सा शायद उस अभागी पर उतारेंगे। खेल खत्म हो चुका था, और उस दिन एक बार फिर मेरी जीत हो गई थी। बिजली के खम्भे के नीचे जहाँ भूमि पर उसके प्रकाश का धवल वृत्त बनता है, वहाँ पहुँचने से पहले मैं मुड़ा और प्रथम बार इन गुण्डों की सूरत पर मैंने ध्यान दिया। उनकी आँखों में घबराहट और शर्म दोनों ही झलक रहे थे। वे पस्त हो चुके थे और खिसक जाने की तैयारी में थे। उनकी शक्ति का अन्त आ गया था, पाँसा पलट गया था, और मुझसे डरने का समुचित कारण था।

इसी समय मेरा मन इन दो प्राणियों के प्रति असीम सहानुभूति, बंधुत्व-जनित सहानुभूति, से अभिभूत हो गया।

आखिर ये लोग, ये दो भूखे आवारे मुझसे चाहते क्या थे ? मुझसे, इस पेटभरे परोपजीवी से वे क्या चाहते थे ? सिर्फ दो-तीन क्राउन । वे उस अँधेरे बीहड़ में मेरा गला भी तो दबा सकते थे, मुझे लूट सकते थे, जान से भी मार सकते थे । तो भी उन्होंने इस भौंड़े तरीके से डरा-धमका कर चाँदी के कुछ फुटकर सिक्के वसूल करने की ही चेष्टा की थी । मैं, जो स्वयं मन की अस्थिरता के कारण चोर बन गया था, केवल उल्लास पाने के लिए अपराध कर बैठा था, अब इन बदनसीबों को सताने की हिम्मत कैसे कर रहा था ? अब मैं उनके भय के साथ खिलवाड़ करने पर शर्मिन्दा था । अब, इस अंतिम क्षण में, जब मैं उनके पंजे के बाहर था, मैं उनके निराश भाव को दूर करने की चेष्टा करूँगा जो उनकी गड़ों में घुसी हुई आँखों में इतनी स्पष्टता से झलक रहा है ।

सहसा मुड़ कर मैं एक के पास पहुँचा, और चिन्ता का भाव दिखाते हुए बोला :

“आप लोग मुझे पुलिस में क्यों दे देना चाहते हैं ? उससे आपको क्या मिल जाएगा ? शायद मुझे कुछ दिन के लिए जेल में बन्द कर दिया जाएगा, शायद ऐसा न भी हो । लेकिन इससे आपको क्या लाभ होगा ? आप मुझको तंग क्यों करना चाहते हैं ?”

वे भौंचक्के होकर मेरी ओर देखने लगे । और किसी चीज़ क । सामना करने के लिए वे भले ही तैयार रहे हों,

गाली-गलौज, या धमकी जिसके सामने वे कुत्तों की तरह दुम हिलाने लगते, लेकिन मेरे इस प्रकार हथियार डाल देने पर उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे क्या करें। अन्त में उनमें से एक ने उत्तर दिया, स्वर में अब धमकी नहीं अपनी सफाई थी :

“न्याय तो होना ही चाहिए। हम लोग केवल अपना कर्तव्य पूरा कर रहे हैं।”

स्पष्ट था कि यह बात ऐसे ही मौकों के लिए गढ़ी-गढ़ाई तैयार रहती थी। पर इस समय इन शब्दों में ज़रा भी जान नहीं थी। उनमें से एक भी मुझसे आँख नहीं मिला रहा था। वे इंतज़ार कर रहे थे। वे मुझसे चाहते थे कि मैं उनके आगे दया की भीख माँगू और फिर कुछ रकम आगे बढ़ा दूँ।

सारा दृश्य पूर्णतया मेरी स्मृति में है, और अपनी भावनाओं की एक-एक बात आज भी याद कर सकता हूँ। इसलिए, मैं जानता हूँ कि दुर्भावना के कारण ही मैंने उन्हें उलझा रखा था, केवल इसलिए कि मैं उनकी हार का आनन्द और भी अधिक उठा सकूँ। किन्तु मैंने अपनी इच्छा पर काबू किया क्योंकि मैं जानता था कि उनको चिन्ता-मुक्त करना मेरा कर्तव्य था। इसलिए मैंने भय का नाटक खेलना शुरू किया और उनके आगे गिड़गिड़ाने लगा कि वे मेरी रिपोर्ट न करें, मुझे चला जाने दें। मैंने देखा कि अब ये दोनों अनुभव-

हीन व्यक्ति बड़ी उलझन में पड़ गए, और चुप्पी की इस दीवार को ढा देने को मेरा मन होने लगा ।

अन्त में, जिन शब्दों को सुनने के लिए वे लालायित थे, वे शब्द मेरे मुँह से निकले :

“मैं तुमको.....मैं तुमको सौ क्राउन दे दूंगा ।”

वे तीनों ही चौंक पड़े, और विस्मित होकर एक-दूसरे की ओर देखते रह गए । इस हारी स्थिति में इतनी बड़ी रकम पाने की उन लोगों को कोई आशा नहीं थी । लेकिन पलभर बाद चेचक के दाग वाले आदमी ने थोड़ी हिम्मत की । उसने दो बार शिक्षक हटाने का निष्फल प्रयत्न किया । आखिर में, बड़ी शर्म से किसी तरह वह अपने मुँह से ये शब्द निकाल सका :

“दो सौ कर दीजिए, सरकार ।”

“बस रहने भी दो ।” अचानक वह औरत बोल पड़ी, “जो कुछ भी यह तुम्हें दे दें, उससे तुम्हें खुश ही होना चाहिए । मुश्किल से उन्होंने मुझको छुआ ही होगा । सचमुच यह तो बड़ी ज्यादाती है ।”

वह आग-बबूला हो गई थी, और मेरा मन नाचने लगा । किसी को मुझसे सहानुभूति है, कोई मेरा भी पक्ष ले रहा है ।

किसी के अंतस्तल से दया उमड़ पड़ी थी । इस पतिता के मन में न्याय की धुंधली-सी लालसा भी थी । वही मेरे लिए संजीवनी का काम कर रही थी । अब मैं उनसे और अधिक खिलवाड़ नहीं कर सका, उनके भय, उनकी लज्जा में अब उनको सताना असम्भव हो गया ।

मैंने कहा, “अच्छा ठीक है, दो सौ ही सही ।”

उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया । मैंने अपना बटुआ निकाला । उसको मैंने धीरे-धीरे, उसका प्रदर्शन करते हुए खोला । इस बटुए को झटक कर भाग जाना उनमें से किसी के लिए भी आसान था, लेकिन वे कातर भाव से दूसरी ओर देखते रहे । मेरे और उनके बीच एक अदृष्ट संधि-पत्र लिख गया था । एक-दूसरे पर हावी होने का संघर्ष अब नहीं होगा, बल्कि एक समझौता, परस्पर विश्वास, मानव-सम्बन्ध होगा । मैंने अपनी चोरी गड्डी में से दो नोट निकाले और अपने पास वाले गुण्डे को थमा दिए ।

“आपका शुक्रिया, हुजूर ।” अब उसके मुंह से निकल ही गया, और वह चल देने को मुड़ा ।

जाहिर है, वह भी अनुभव कर रहा था कि इस तरह रुपया वसूल कर लेने पर धन्यवाद देना कितना बेहूदा है । इसके लिए उसको अपने आप पर लज्जा आ रही थी और मुझे उसकी लज्जा पर दुःख हो रहा था । मैं नहीं चाहता था

कि वह मेरे आगे लज्जित हो, क्योंकि मैं भी तो उसी मिट्टी का बना था, मैं भी उतना ही चोर था जितना कि वह, मैं भी कायर और कमजोर था। उसकी ज़िल्लत पर मुझे वेदना हो रही थी। इसलिए मैंने उसके धन्यवाद को अस्वीकार कर लिया।

“वास्तव में धन्यवाद तो मुझे देना चाहिए।” मैंने उत्तर दिया। यह बात कहते समय मुझे अपने विशुद्ध प्रतीति भरे स्वर पर आश्चर्य हो रहा था। ‘अगर आपने मुझे पुलिस के हवाले कर दिया होता तो मैं कहीं का न रहता। मुझे भी सिर मारना पड़ता और आपके हाथ भी कुछ न लगता। इस मुश्किल को हल करने का सबसे आसान तरीका यही रहा। अच्छा, अब मैं तो दाहिने हाथ को जाऊँगा, और आप लोग दूसरी ओर। नमस्कार।’

क्षणभर की हिचक। इसके बाद एक ने ‘गुड नाइट’ कहा, फिर दूसरे ने और अन्त में उस लड़की ने जो अंधेरे में छिपी खड़ी रही थी। विदाई के ये शब्द शुद्ध सौहार्द्र से ओत-प्रोत थे। उनके स्वर ने मुझे बता दिया कि उनके मन में मेरे प्रति एक प्रकार का अनुराग पैदा हो गया है और वे इस घटना को कभी नहीं भूलेंगे। किसी दिन किसी अस्पताल में या अपाहिजों के किसी आश्रम में आज की बात उन्हें याद आवेगी। मेरे हृदय की कोई चीज़ उनके हृदय में प्रवेश कर गई थी, और वह चीज़

उनके अन्दर जीवित रहेगी । मैंने उन्हें कुछ दे दिया था । इस दाव का आनन्द मेरे जीवन की सबसे प्रखर अनुभूति थी ।

इसके बाद मैं अकेला प्रेटर के फाटक की ओर चल दिया । मेरे मन का बोझ एकदम उतर चुका था । वृक्ष मुझसे चुपके-चुपके बोल रहे थे, मैं उन्हें प्यार करने लगा । आकाश के तारे मेरे ऊपर चमक रहे थे, मैं उनके ज्योतिमय अभिनन्दन के आनन्द का उपभोग कर रहा था । कहीं दूर से ऊँचे स्वर में गाये हुए गीतों के स्वर आ रहे थे, लोग मेरे लिए ही गा रहे थे । प्रत्येक वस्तु में मुझे अपनापन लग रहा था, जिस खोल में अभी तक मैं क़ैद था, उसको अब मैं तोड़ चुका था । दान के आनन्द ने, दोनों हाथों से लुटने के आनन्द ने, सारे संसार से मेरा सम्बन्ध जोड़ दिया था । मैं सोच रहा था, “आनन्द देना और आनन्द पाना भी कितना सरल है । केवल अपने-अपने हृदय के कपाट खोल देने की आवश्यकता है, फिर तो जीवन की धारा ऊँचाई से गहराई तक गरजती हुई और गहराई से ऊपर निस्सीम की ओर उफनती छहराती एक प्राणी से दूसरे प्राणी तक प्रवाहित हो जाती है ।”

जब मैं प्रेटर के फाटक पर पहुँचा, तो मुझे एक बुढ़िया बग्घी के अड्डे के पास बैठी दिखाई दी । वह खोमचा लगाती

थी और इस समय थक कर अपने मामूली से सामान के ऊपर झुकी हुई बैठी थी। उसको छोटी-सी दूकान में धूल जमे हुए कुछ केक थे और कुछ फल। निस्संदेह, वह थोड़े-से पैसे कमाने के लिए सुबह से ही वहाँ बैठी रही होगी। मैंने मन में कहा, “तुम भी मेरे समान आनन्द क्यों न उठाओ ?” इसलिए मैंने एक केक ले लिया और उसके हाथ पर एक नोट रख दिया। बाकी दाम लौटाने के लिए वह टटोलने लगी, लेकिन मैंने इशारे से मना कर दिया। वह प्रसन्नता और विस्मय से काँपने लगी और कृतज्ञता के शब्दों की उसने झड़ी लगा दी। इन शब्दों के ऊपर कोई ध्यान न देकर मैं उसकी चलती फिरती दूकान में जुते हुए घोड़े के पास गया और केक उसके मुँह में दे दिया। उसने मित्रता के भाव से अपने नथुने थराए, मानो वह भी धन्यवाद देना चाहता हो। इस पर मेरा मन और भी अधिक आनन्द वितरित करने की इच्छा से भर गया, और अधिक अच्छी तरह यह जानने की इच्छा से कि चाँदी के कुछ सिक्कों या रंगबिरंगे कागज के कुछ छपे हुए टुकड़ों की सहायता से दूसरों को चिंता मुक्त करना, उनमें उल्लास बाँटना कितना सरल है। अब कोई भिखमंगा नज़र क्यों नहीं आ रहा ? कोई बच्चे क्यों नहीं दीख रहे जो उन गुब्बारों को ले लेना चाहते हों, जिन्हें वह बुढ़ा लँगड़ता हुआ घर की ओर लिए जा रहा है। उसके पास धागे से बँधे हुए गुब्बारों का पूरा एक बंडल रहा होगा। जाहिर था कि आज उसकी बिक्री बहुत कम हुई थी। मैंने उसको रोका :

“ये गुब्बारे मुझे दे दो ।”

“एक-एक पैनी का है”, उसने संदेहपूर्वक कहा, क्योंकि उसको यक्रीन नहीं आ रहा था कि मेरे जैसा, शानदार कपड़े पहने कोई आदमी इस आधी रात के समय उसके रंगबिरंगे गुब्बारे खरीदना चाहेगा ।

मैंने कहा, “मुझे सब दे दो” और उसको दस क्राउन का एक नोट दे दिया ।

निश्चय ही वह विस्मय से सिहर उठा । उसने गुब्बारों की डोरी मुझे थमा दी । अपनी उँगलियों पर मुझ तनाव-सा मालूम पड़ने लगा । ये गुब्बारे मुक्त होना चाहते थे, आसमान की ओर उड़ जाना चाहते थे । उन्हें भी अपनी इच्छा की पूर्ति क्यों न करने दी जाए ? मैंने डोरी छोड़ दी और वे रंग-बिरंगे चन्द्रमाओं के समान ऊपर उठ गए । लोग चारों ओर से हँसते-खिलखिलाते, दौड़-दौड़ कर आने लगे, अंधकार में निकल कर आए, गाड़ीवान चाबुक फटकारते हुए एक-दूसरे को आवाज़ देकर छतों और वृक्ष-शिखरों के ऊपर तिरते हुए गुब्बारों की ओर इशारा करने लगे । इस मज़ाक पर सभी लोग खुश हो रहे थे ।

अब तक मुझे इस बात का ज्ञान क्यों नहीं हो सका था कि आनन्द का वितरण करना इतना आसान है, इतना उपभोग्य है ? फिर एक बार मेरे बटुए के नोट मुझे दग्ध

करने लगे, गुब्बारों की डोरी की भाँति उनसे भी मेरी उँगलियों में खिंचाव पैदा हो गया। वे भी 'अज्ञात' में उड़ जाना चाहते थे। मैंने सारे नोट निकाल लिए, केवल वे ही नहीं जो मैंने लाजोस से चुरा लिए थे, बल्कि वे भी जो मेरे पास पहले से ही थे। अब मेरे लिए उनमें कोई फर्क नहीं रहा था, अब मुझे यह प्रतीत नहीं हो रहा था कि उनमें से केवल कुछ पर जुर्म की छाप लगी हुई है। ये रहे वे नोट, अब उन्हें जो चाहे सो ले सकता है। मैं झाड़ू लगाने वाले के पास गया जो बड़े बेमन से वीरान सड़क को साफ कर रहा था। उसने सोचा कि मैं शायद रास्ता बूछने के लिए आया होऊँगा और झुंझला कर उसने मेरी ओर देखा। हँसते हुए बीस क्राउन का एक नोट मैंने उसकी ओर बढ़ा दिया। वह भौंचक्का-सा होकर देखने लगा, पर अन्त में उसने वह नोट ले लिया और इंतज़ार करने लगा कि मैं आखिर उससे चाहता क्या हूँ। मैं बोला "इससे अपनी तबीयत की कोई चीज़ खरीद लेना," और आगे बढ़ गया।

मैं चारों ओर झाँक रहा था कोई मिल जाए जो मुझसे कुछ माँग ले। लेकिन जब किसी ने कुछ माँगा नहीं तो मैंने खुद ही देना प्रारम्भ कर दिया। एक वेश्या ने आवाज़ दी, मैंने उसे एक नोट दे दिया। रोशनी जलाने वाले को दो नोट दे दिए। एक नोट नानाबाई की दूकान में फेंक दिया। इस प्रकार मैं अपने पीछे आश्चर्य, कृतज्ञता और उल्लास की वर्षा करता हुआ आगे बढ़ने लगा।

अन्त में मैंने नोटों को यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखेरना शुरू कर दिया—सड़क पर, गिर्जाघर की सीढ़ियों पर। मैं यह सोचकर मुस्करा दिया कि फल बेचने वाली बुढ़िया को अपनी दूकान पर जब सुबह सौ क्राउन का नोट पड़ा मिलेगा तो वह परमात्मा को इस आकाशवृत्ति के लिए कितना धन्यवाद देगी। कोई निर्धन विद्यार्थी, या नौकरानी, या मजदूर इन नोटों को उसी आश्चर्य और उल्लास से उठाएँगे जिससे अनुप्राणित होकर मैं उन्हें चारों ओर बिखेर रहा था।

जब मैंने अंतिम छुटकारा पा लिया तो मेरा मन इतना हलका हो गया कि विश्वास न हो; मानो अब मैं हवा में उड़ने लगूँगा। मुक्ति की अपूर्व भावना का आनन्द मुझे मिलने लगा। सड़क के प्रति, आकाश के प्रति, घरों के प्रति मेरे मन में एक नई आत्मीयता जाग उठी। इससे पहले कभी भी, अपने अस्तित्व के सबसे उत्साहपूर्ण क्षणों में भी, इन सब चीजों के यथार्थ का आभास इतनी प्रखरता से नहीं हुआ था—इस बात का कि वे सजीव हैं और मैं सजीव हूँ और उनके अन्दर का और मेरे अन्दर का जीवन एक ही जीवन है, वह विराट और शक्तिमान् जीवन जिसमें कभी भी आनन्द की अति नहीं हो सकती—वह जीवन जिसको केवल वही समझ सकता है, जो प्रेम करता है और जो दान करता है।

मेरी व्याकुलता का एक अंतिम क्षण और आया। वह तब जब मैंने अपने दरवाजे पर पहुँच कर चाभी घुमाई और अपने

कमरे के अंधकारपूर्ण प्रवेश-द्वार पर नज़र डाली । सहसा मुझे इस चिन्ता ने घेर लिया कि अब चूँकि मैं उसी पुराने परिचित घर में जा रहा हूँ, उसी परिचित बिस्तर में लेटने वाला हूँ, जिन उपादानों से उस रात को सम्बन्ध-विच्छेद कर चुका था उनसे फिर सम्पर्क होने वाला है, तो कहीं मैं अपने पिछले जीवन में ही फिर प्रवेश न कर जाऊँ, एक ही चीज़ आवश्यक थी, वह यह कि मैं वही पुराना आदमी फिर से न बन जाऊँ, कि मैं वही कल वाला 'भद्र पुरुष' अब न बन जाऊँ, वही ऊपरी टीमटाम का गुलाम जो किसी चीज़ को महसूस नहीं करता था, जो सारी दुनिया से दूर-दूर रहता था । इससे अच्छा तो यही होगा कि अपने को सचमुच सजीव बनाए रखने के लिए मैं अपराध और दुष्टता के पाताल में कूद पड़ूँ । मैं थक कर चूर-चूर हो चुका था, फिर भी नींद से मुझे डर लग रहा था, क्योंकि मुझे आशंका थी कि सोते समय यह उत्साह, नव-जीवन की चेतना लुप्त हो जाएगी । मुझे डर था कि कहीं यह सारा अनुभव एक स्वप्न की भाँति अस्थिर साबित न हो ।

लेकिन दूसरे दिन सुबह जब मैं जागा तो प्रसन्नचित्त था । नई भावना की धारा अब भी सशक्त थी । तब से चार महीने बीत चुके हैं और वह पुराना अवरोध फिर नहीं लौटा है । उस दिन का वह आश्चर्यजनक उल्लास जब मैं अपने संसार के सारे रूढ़िगत मार्गों को त्याग कर 'अज्ञात' में उतर पड़ा था, गति से सिर चकराते हुए, आनन्द के नशे में चूर, जीवन के

अतल सागर में कूद पड़ा था—उस ललक का चरमबिन्दु तो अब नहीं रहा है । तो भी तब से मैं अपने प्रत्येक क्षण में जीवन के अभिनव आनन्द का अनुभव करता रहा हूँ । मैं जानता हूँ कि मेरा पुनर्जन्म हुआ है नयी ज्ञानेन्द्रियों के साथ, जो अन्य प्रकार के उत्तेजन के प्रति संवेदनशील हैं, अधिक स्पष्ट चेतना से अनुप्राणित । मैं कभी भी यह तौलने के लिए नहीं बैठूंगा कि मैं पहले से अच्छा आदमी हूँ या नहीं, पर यह मैं जानता हूँ कि मैं पहले से अधिक सुखी हूँ ।

जीवन ठंडा हो गया था, निरर्थक हो गया था, किन्तु अब यह सार्थक हो गया है, और इसके लिए मेरे पास इस शब्द 'जीवन' के अतिरिक्त और कोई संज्ञा नहीं है । मैं अपने सारे कृत्रिम बन्धन तोड़ चुका हूँ—समाज के वे सारे नियम और रूढ़ियाँ जिनके बीच मेरा पालन-पोषण हुआ था, अब मुझे नहीं बाँध पाते । अब न मैं दूसरों के प्रति लज्जित होता हूँ न अपने प्रति । प्रतिष्ठा, अपराध, पाप-प्रभृति शब्द अब मुझे हलके लगते हैं और उनका प्रयोग मुझे अरुचिकर लगता है । मुझे जीवनी-प्रेरणा उस शक्ति से मिलती है जिसको मैंने उस आश्चर्यजनक रात्रि को प्रथम बार पहिचाना था । मुझे नहीं मालूम कि वह मुझे किधर ले जा रही है । हो सकता है कि वह मुझे एक गह्वर की ओर लिए जा रही हो, उसकी ओर जिसे दूसरे लोग 'पाप' या 'जुर्म' कह कर पुकारते हैं । यह भी हो सकता है कि वह मुझे उस ओर लिए जा रही हो

जो परम पावन है । न तो यह मैं जानता हूँ, और न जानने के लिए चिंतित ही हूँ । मेरा तो यह विश्वास है कि वास्तव में केवल वही व्यक्ति जीवित है, जो भविष्य की गतिधियों को सुलझाने में नहीं उलझता ।

एक बात का मुझे निश्चय है और वह यह कि मैंने जीवन से कभी इतना प्रेम नहीं किया था । और मैं यह भी जानता हूँ कि जो भी व्यक्ति जीवन के किसी भी रूप या तरीके के प्रति उदासीन होता है, वह अपराध करता है—संसार में बस यही एक अपराध है । अब मैं अपने आपको समझने लगा हूँ तो अपने चारों ओर घटित होने वाली बातों को भी पहले से कहीं अधिक अच्छी तरह समझने लगा हूँ । किसी दूकान की खिड़की की ओर देखती हुई ललचायी दृष्टि मुझे एकदम द्रवित कर देती है; कुत्ते की कलोलों से मेरे मन में भी उत्साह भर जाता है । मुझे प्रत्येक वस्तु में दिल-चस्पी है, अब किसी भी तरफ से उदासीन नहीं हूँ । जिस अखबार पर मैं यों ही नज़र मार लेता था, उसमें मैं सैकड़ों घटनाओं को उत्साहपूर्वक पढ़ता हूँ । जिन ग्रंथों से मैं ऊब जाता था, अब वे ही मेरा हृदय-स्पर्श कर लेते हैं । और सबसे अजीब बात तो यह है कि मैं अपने मानव-बंधुओं से किसी भी विषय पर बातचीत कर सकता हूँ, केवल उन विषयों के अतिरिक्त जिन्हें 'भद्र समाज' में 'सम्भाषण' की संज्ञा दी जाती है ।

अपने नौकर में, जो मेरे साथ सात साल से है, अब मैं आकर्षण पाता हूँ और अक्सर उससे बातचीत करता हूँ। मेरे मकान के दरबान ने, पहिले जिसकी ओर बिना देखे हो मैं निकल जाता था (मानो वह कोई बेजान खम्भा हो।) कल ही मुझे अपनी छोटी बच्ची की मृत्यु का हाल बताया था। उसके विवरण ने मुझे इतना द्रवित कर दिया, जितना शेक्स-पियर के किसी दुखांत नाटक ने कभी नहीं किया। यद्यपि बाह्यरूप से मेरा जीवन अब पहले जैसा ही प्रतिष्ठित 'ऊब' से भरा हुआ है, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि लोगों को मेरे इस आंतरिक परिवर्तन का पता लग गया है। अब पहिले से कहीं अधिक हार्दिकता से वे मुझसे मिलते हैं। पिछले सप्ताह तीन बार एक अजनबी कुत्ता मुझे देख कर आगे आया और दुम हिलाने लगा। मेरे मित्रगण मेरी ओर स्नेहपूर्ण उल्लास से देखते हैं जैसे कोई बीमारी से उठे हुए स्वस्थ होते हुए व्यक्ति की ओर देखता है। वे मुझसे कहते हैं कि मैं पहले से अधिक जवान हो गया हूँ।

क्या सचमुच मुझमें अधिक यौवन आ गया है ? मुझे तो केवल यही ज्ञात है कि मेरा जीवन अब प्रारम्भ हुआ है। आह, दिन-प्रतिदिन के भ्रम का भी मुझे ज्ञान हो गया है। मैं जानता हूँ कि लोगों में अपने भूतकाल को एक गलती, एक तैयारी, मान बैठने की प्रवृत्ति होती है। अपने उष्ण, सजीव

हाथ में एक निर्जीव कलम लेकर शुष्क कागज पर यह अंकित कर देना कि अब मैं वास्तव में सजीव हो गया हूँ, निस्संदेह धृष्टता की बात है। किन्तु यह निष्कर्ष भ्रम हो, तो भी यही वह प्रथम मरोचिका है जिसके कारण मैं सुखी हुआ हूँ, जिसने मेरे रक्त में स्फूर्ति भर दी है और मेरी चेतना को मुक्त कर दिया है। यदि आज मैं अपने जागरण के चमत्कार को रेखांकित करने बैठा हूँ, तो वह केवल अपने लिए ही, यद्यपि शब्दों में इसको प्रस्तुत करने की जितनी क्षमता हो सकती है, उससे कहीं अच्छी तरह इस सबको मैं स्वयं जानता हूँ। इसके बारे में मैंने अपने किसी भी मित्र को कभी नहीं बताया है। उन्हें यह पता नहीं कि मैं कितना निष्प्राण हो चुका था, वे यह अनुमान कदापि न कर सकेंगे कि मेरा जीवन किस प्रकार फिर से हराभरा होकर लहलहाने लगा। न मुझे इस बात से ही चिन्ता होती है कि अचानक किसी भी समय मौत अपना पंजा मेरे इस नवीन, सजीव, जीवन पर डाल सकती है, और ये पंक्तियाँ किन्हीं अन्य नेत्रों द्वारा पढ़ी जाएँगी। जिन लोगों को इस प्रकार की घड़ियों की (जिनका मैंने वृत्तांत लिखा है) अनुभूति नहीं, वे इस सबको कतई नहीं समझ सकेंगे, जैसे कि छः महीने पहले तक मैं खुद भी नहीं समझ सकता था कि एक शाम की बहुत मामूली-सी एक घटना मेरे जीवन की लौ को फिर से जगा सकती है। इस प्रकार के पाठकों के खयाल से मुझे तनिक भी संकोच नहीं है, क्योंकि जो कुछ मैंने लिखा

है उसे वे कभी भी न समझ सकेंगे । किन्तु जो समझदार है, वह न तो तौलने ही बैठेगा और न उसे दंभ होगा । उसके आगे मुझे लज्जित नहीं होना पड़ेगा । जिसने स्वयं को पा लिया है वह इस संसार में कभी कुछ खोयेगा नहीं । जिसने अपने अन्तर के मानव को जान लिया है, उसने सम्पूर्ण मानव-समाज को पहिचान लिया है ।



✱ प्रेम-चक्र

पिछली गर्मियों में मैंने एक महीना कंडेनेविया में बिताया । यह स्थान कौमो-झील के किनारे के अत्यन्त सुन्दर स्थलों में से है । यहाँ हरे वृक्षों से घिरे सफेद मकान बड़े मनो-हर हैं । वसन्त-ऋतु में भी जब अन्य नगरों से यात्री आते हैं, इस नगर में शान्ति ही रहती है । गर्मी के दिनों में यहाँ का वातावरण अत्यन्त सुगन्धित, सुहावना और शान्तिपूर्ण था । होटल, जिसमें मैं ठहरा हुआ था, कगोब-करीब खाली पड़ा था । थोड़े-से आदमी थे, वे भी अलग-अलग रहते थे । सुबह होते ही सब लोग एक-दूसरे की ओर उपहासपूर्वक देखते थे । किसी भी दूसरे आदमी को इस निर्जन स्थान में देख कर उन्हें

आश्चर्य होता था । मैं स्वयं एक वृद्ध सज्जन को रहते देखकर चकित था । वे बड़े साफ-सुथरे ढंग से कपड़े पहनते थे और अपने सद्व्यवहार से या तो अँग्रेज राजनीतिज्ञ मालूम पड़ते थे, या पेरिस के कोई शहरी । मैं सोचता था कि आखिर वे समुद्री-तट के किसी अन्य स्थान को क्यों नहीं गए ? उनका दिन बड़ी गम्भीरतापूर्वक अपनी सिगरेट के धुँए को देखने में बीतता था । कभी-कभी किताबों के पन्ने भी वे पलटने लगते थे । एक बार लगातार दो-तीन दिन पानी बरसा । उन्हीं दिनों मेरी उनसे जान-पहचान हो गई । वे इतनी हार्दिकता से मिले कि मेरी और उनकी आयु का वैषम्य शीघ्र ही दूर हो गया और हम लोगों के सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ट हो गए ।

उनका जन्म लिवोनिया में हुआ था । उन्होंने फ्रांस और इंग्लैण्ड में शिक्षा पाई थी । किसी एक धंधे या स्थान पर वे टिके न थे । उन्हें एक गृहहीन पर्यटक कहा जा सकता है, जो प्रत्येक स्थान का सौन्दर्य उपभोग करने के लिए निकल पड़ा हो । प्रत्येक कला में उनकी जानकारी थी; लेकिन किसी पर भी ज़मकर काम करने का उनका स्वभाव न था । इन कलाओं में हजारों घण्टे उन्होंने आनन्दपूर्वक बिताए थे; लेकिन एक क्षण को भी वे अपनी सृजन-शक्ति काम में नहीं लाए । उनका जीवन एकदम निष्प्रयोजन मालूम पड़ता था । उन्हें देख कर यही विचार आता था कि उनके प्राणान्त के साथ ही उनके तमाम विज्ञ अनुभवों का भी निष्फल अन्त हो जाएगा ।

एक दिन जब हम लोग भोजन करने के बाद होटल के बाहर झील के किनारे बैठे थे, मैंने इसके बारे में चर्चा की। उन्होंने मुस्कराकर उत्तर दिया—“शायद आप ठीक कहते हैं। चीजें याद रखने में मुझे ज़रा भी दिलचस्पी नहीं। अनुभव तो केवल अनुभव है, अपनी जगह पर ही उसकी इति हो जाती है। कहानियों की कल्पनाएँ भी बीस-पच्चीस या सौ साल बाद विस्मृत हो जाती हैं। जाने दीजिए, मैं आपको एक घटना का हाल सुनाता हूँ, जिसके आधार पर एक सुन्दर कहानी गढ़ी जा सकती है। यह मेरी ही कहानी है। पिछले साल अगस्त के महीने में मैं कैडेनेविया में ही था और इसी होटल में ठहरा हुआ था। इससे आपको आश्चर्य तो अवश्य होगा; क्योंकि मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मैं सब बातें भूल जाया करता हूँ, दुहराता नहीं। लेकिन मेरी कथा सुन लेने के बाद आपकी शंका दूर हो जाएगी कि मैंने इस बार अपना नियम क्यों तोड़ दिया है ?

“उन दिनों भी यह स्थान उतना ही शुष्क था, जितना अब है। आजकल यहाँ एक मिलान-निवासी ठहरा हुआ है, जो सारे दिन मछलियाँ पकड़ता है और शाम होते ही दिन-भर का शिकार नदी में छोड़ देता है और दूसरे दिन सुबह से फिर उनके लिए काँटा डाल कर बैठता है। वह भी उन दिनों यहीं था। दो अँगरेज भी यहाँ थे, जो इतनी शान्तिपूर्वक रहते थे कि उसकी उपस्थिति का किसी को भान भी न होता था। साथ ही एक सुन्दर तरुण और था। उसके साथ

एक आकर्षक, किन्तु निस्तेज लड़की भी थी । मुझे उनके पात-पत्नी होने में संदेह है; क्योंकि उनमें अत्यधिक प्रेम-भाव था ।

“इसके सिवा एक जर्मन-परिवार और था । गुण, स्वभाव और ढंग से वे लोग उत्तरी जर्मनी के निवासी प्रतीत होते थे । उनमें एक गोरे रंग की वृद्धा थी—पतली, दुबली, अस्वस्थ । शकल से वह मन्दबुद्धि प्रतीत होती थी । ऐसा मालूम पड़ता था, जैसे उसके होंठ किसी तेज चाकू से दो हिस्सों में विभाजित कर दिए गए हों । दूसरी औरत निस्संदेह उसकी बहन थी; क्योंकि उसकी आकृति इससे मिलती-जुलती थी । वे दोनों हमेशा सीने-पिरोने में लगी रहती थीं । उन्हें देख कर ऐसा मालूम होता था, मानो वे अपने मस्तिष्क की सारी शून्यता अपने काम में भरे दे रही हों । उनके साथ सोलह-सत्रह साल की एक लड़की भी थी, जो उनमें से किसी एक की पुत्री थी । उसकी आकृति में इस परिवार के-से कठोर लक्षण न थे । वह अभी तक अपरिपक्व थी; स्त्रीत्व के चिह्न उसके अंगों में प्रस्फुटित हो रहे थे । वह भी दुबली-पतली थी बड़ी सरल और सादा । उसके वस्त्र भी सुन्दर न थे; फिर भी उसके प्रति उत्सुकता होती थी । उसके नेत्र बड़े-बड़े थे, जिनमें ऐसा भाव था, मानो शान्त अग्नि उनमें छिपी हुई हो । साथ ही वह इतनी लजीली थी कि किसी के चेहरे की तरफ नहीं देखती थी । अपनी माँ और मौसी की तरह वह भी सुई का कोई-न-कोई काम हाथ में लिए रहती, यद्यपि वह उनके

बराबर परिश्रमी न थी । कभी-कभी उसके हाथों की गति मन्द हो जाती थी, उँगलियाँ रुक जाती थीं और वह निश्चेष्ट होकर स्वप्नवत् झील की ओर देखने लगती थी । मैं कह नहीं सकता कि इन क्षणों में क्या चीज मुझे उसकी ओर आकर्षित करती थी । शायद यह आकर्षण एक अत्यन्त साधारण भाव था, जो एक वृद्ध माँ और उसकी किशोरी पुत्री के पास-पास बैठने के दृश्य से पैदा होता है । इस दृश्य में पदार्थ है और पृष्ठभूमि में उसकी छाया है । इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक कपोल में उसकी झुर्रियाँ छिपी हुई हैं, प्रत्येक मुस्कान के पीछे दर्द है, प्रत्येक स्वप्न में उसकी क्षणिकता भी निहित है । अथवा यह आकर्षण उसकी उत्कट, लेकिन लक्ष्यहीन अभिलाषा के कारण था, जो अत्यन्त सरलतापूर्वक उसकी आकृति पर झलकती थी—किशोरी की अत्यन्त सुनहली घड़ियों की अभिलाषा, जब उसकी आँखें किसी को ढूँढ़ती-फिरती हों; लेकिन अभी तक उसे अपने चिर-साथी के प्रथम दर्शन का भी सौभाग्य प्राप्त न हुआ हो ।

“कारण चाहे कुछ भी हो, उसकी ओर देखने से मन में करुणा का भाव जाग्रत होता था । उसके कुत्ते-बिल्लियों को प्यार करने के ढंग, एक के बाद दूसरा काम शुरू करने और उस पर स्थिर न रहने के चांचल्य—इन सबमें करुणा थी । होटल की लाइब्रेरी की मैली-गंदी पुस्तकों का उसका अध्ययन भी हर्मस्पर्शी था । वह गेटे तथा बौम्बैक

की दो-एक पुस्तकें साथ भी लाई थी, जिन्हें वह बड़ी सावधानी से पढ़ती थी ।”

एक क्षण रुक कर उन्होंने प्रश्न किया—“आपके हँसने का क्या कारण है ?”

मैंने विनीत भाव से उत्तर दिया—“गेटे और बीम्बैक की असामान्यता को तो आप भी स्वीकार करते होंगे ।”

“असामान्यता ! शायद आप ठीक कहते हैं । लेकिन कोई खास बात नहीं है । इस उम्र की लड़की को इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि पुस्तक अच्छी है या बुरी; पद्य में माधुर्य है या नहीं । पद्यबद्ध पंक्तियाँ तो केवल किसी भाव की वाहक हैं, जिससे हृदय की प्यास बुझ जाती है । शराब कैसी है, इससे उसे कोई सरोकार नहीं । वह तो प्याला होठों तक ले जाने के पूर्व ही मत्त है । यही दशा उस लड़की की भी थी । उसकी आँखों में उत्कण्ठा और उत्सुकता झलकती थी । उसकी उँगलियाँ मेज़ पर अपने आप नाचने लगती थीं । उसके व्यवहारों में लज्जा के साथ आवेग भी था, जो असंगत था, किन्तु आकर्षक । वह किसी के आगे अपना हृदय खोलने के लिए, अपने अगणित भावों को व्यक्त करने के लिए अत्यन्त व्यग्र थी । लेकिन उससे बात-चीत करने वाला कोई तो नहीं था । उन दो बूढ़ियों के बीच में बैठी हुई भी वह एकाकिनी थी । मेरे अन्दर उसके प्रति

सहानुभूति उमड़ आई, लेकिन मैं आगे बढ़ने में असमर्थ था । इस लड़की के लिए मेरी उम्र वाले आदमी में क्या आकर्षण हो सकता था ? इसके अलावा मैं स्वयं किसी परिवार से नहीं मित्रता बढ़ाना अधिक पसन्द नहीं करता—खास तौर पर इस प्रकार की असंस्कृत वृद्धाओं से तो मुझे घृणा-सी है ।

‘मुझे एक अजीब विचार आया । मैंने सोचा, इस लड़की ने हाल ही में स्कूल छोड़ा है, अनुभवहीन है । अवश्य ही वह इटली में पहली बार आई है । सब जर्मन शेक्सपियर के ग्रंथ पढ़ते हैं, और यद्यपि शेक्सपियर ने स्वयं कभी भी इटली की भूमि पर पैर नहीं रखा था, फिर भी उनके लिए तो इस देश में वही रंगीला वातावरण है—रोमियो, प्रेम-पत्र, हाव-भाव तथा यौवन की अन्य रंगीनियाँ हैं । निस्संदेह यह लड़की भी इन्हीं के स्वप्न देख रही होगी—उन स्वप्नों की, जो नीले आकाश में तैरने वाले श्वेत बादलों की भाँति, उस आकाश में जो संध्या-काल में रक्ताभ और स्वर्णिम हो उठता है, सीमा कहाँ है ? इस संसार की कोई भी चीज़ उसे असम्भव न दीखती होगी । मैंने तय कर लिया कि मैं उसके लिए एक साथी ढूँढ़ निकालूँगा ।

“उसी शाम को मैंने एक लम्बा प्रेम-पत्र लिखा—मधुरता विनम्रता और सम्मान से भरा हुआ । वह जर्मन भाषा में लिखा गया था; लेकिन उसके प्रत्येक शब्द से ज्ञात हो जाता था कि पत्र के लेखक की मातृभाषा कोई विदेशी भाषा है ।

नीचे हस्ताक्षर नहीं थे । लेखक ने कोई याचना नहीं की थी; कोई प्रस्ताव नहीं रखा था । इस प्रकार के प्रेम-पत्र प्रत्येक उपन्यास में मिल जाँएँगे । यह पत्र अधिक लम्बा न था, यदि विषयानुकूल कह दूँ, तो अत्युक्ति न होगी । अपने आन्तरिक उद्वेग के कारण वही सर्वप्रथम जलपानगृह में आकर बैठती थी, यह जानकर मैंने उसके 'नैपकिन' में वह पत्र रख दिया ।

“दूसरे दिन प्रातःकाल मैं बाग में छिप कर बैठ गया । इस स्थान से मैं चुपके-चुपके खिड़की में होकर उसे देखने लगा । मैंने देखा कि वह चकित और शंकित हो उठी । एका-एक उसके पीले कपोलों पर लालिमा छा गई । उसके कान की लौ तक लाल हो गई । उसने धवरा कर चारों ओर देखा । उसके हाथ काँपने लगे । उसने पत्र को छिना लिया । जलपान के समय वह व्याकुल रही और मुश्किल से कुछ खा सकी । उसकी आकांक्षा किसी निर्जन स्थान को उड़ जाने की थी, जहाँ वह इस रहस्यमय पत्र को निश्चित होकर पढ़ सके ।... हाँ, आपने क्या कहा ?”

मेरे चेहरे का भाव अनिच्छापूर्वक बदल गया था । मुझे इसका कारण बताना पड़ा—“आप एक बड़ा खतरा मोल ले रहे थे । आपने यह क्यों न सोचा कि वह इस मामले की छान-बीन कर सकती है, होटल के नौकर से पूछ सकती है या अपनी माँ को वह पत्र दिखा सकती है ।”

“हाँ, मैंने इन सम्भावनाओं को कहना कर ली थी। लेकिन यदि आपने उस लड़की को देखा होता और यह देखा होता कि वह किसी के जोर से बोलने पर कितनी भयभीत हो जाती थी, तो आपको इस बात को चिन्ता न होनी। कुछ युवतियाँ इतनी शर्मीली होती हैं कि उन्हें कोई आदमी कितना ही छड़े, सब सह लेती हैं। उनमें इन सब बातों की शिकायत करने की हिम्मत नहीं होती।

“खैर, मैं अपनी युक्ति की सफलता पर मन-ही-मन प्रसन्न हो उठा। जब वह बाग में टहल कर लौटी, तो उसे देख कर स्वयं मेरा चेहरा लाल हो उठा। वह एकदम बदल गई थी। उसकी चाल में स्फूर्ति आ गई थी। वह क्या चाहती थी, वह स्वयं उसे भी ज्ञात न था। उसके गाल सुर्ख हो गए थे। उसकी बचैनी भी आकर्षक थी। दिन-भर यहीं रही। वह सारे दिन इसका रहस्य पाने की चेष्टा में एक के बाद एक खिड़की में से झाँकती रही। प्रत्येक आने-जाने वाले की ओर कुछ ढूँढ़ निकालने की आशा से वह देखती रही। एक बार मेरी और उसकी दृष्टि मिल गई। मैंने तुरन्त अपनी निगाह बदल दी, जिससे कहीं मेरी आँखें सारा भेद खोल न दें। लेकिन इस एक पल में ही मैंने अनुमान लगा लिया कि उसके अन्दर उत्सुकता और जिज्ञासा का ज्वालामुखी भड़क रहा है। मैंने कई वर्षों पहले कहीं पढ़ा था कि जब कोई किसी लड़की के नयन में प्रथम बार यह अग्नि जला देता है, तो उसकी खुशी के समान गम्भीर और विमोहक अन्य कोई मनोरंजन

नहीं हो सकता । यह विचार आते ही मैं भयभीत हो उठा ।

“मैं उसे दोनों वृद्धाओं के बीच में बैठा देख रहा था । वे सदा की भाँति अपना काम कर रही थीं, पर उसकी उँगलियाँ आज स्थिर थीं । थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसका हाथ अपनी पोशाक के एक स्थान पर चला जाता । मैं जानता था कि इसी स्थान पर वह पत्र सुरक्षित है । मुझे इस खेल में और भी मज़ा आने लगा । उसी शाम को मैंने एक और पत्र लिखा । इसके बाद प्रत्येक रात्रि को मैं पत्र लिखने लगा । धीरे-धीरे इन पत्रों में एक युवक के प्रेम-भाव व्यक्त करने में, कल्पनिक अनुराग प्रकट करने में, खूब आनन्द आने लगा । इसमें सन्देह नहीं कि जाल फैलाने वाले को भी इसी प्रकार का आनन्द आता है । हिरन फँसाने वाला भी पूरा-पूरा आनन्द उठाता है । अपनी सफलता से मैं भयभीत हो गया था, फिर भी अपने मनोविनोद को छोड़ने के लिए मैं पूर्णतया तैयार न था । जो खेल इतने मजे से चल रहा हो, उसे आगे बढ़ाने का लोभ संवरण करना मेरे वश की बात न थी ।

अब वह चलती, तो मालूम होता, मानो वह नाच रही हो । उसके अंग-अंग में अनुराग भर गया था । उसकी रातें अवश्य ही अगले सुबह आने वाले पत्र की प्रतीक्षा में बीतती होंगी; क्योंकि उसकी आँखों के नीचे काले गड्ढे हो गये थे । वह अपनी वेश-भूषा पर भी अधिक ध्यान देने लगी । उसके बालों में अब फूल लगे दिखाई देते । उसके प्रत्येक स्पर्श में

कोमलता आ गई थी। मैंने इन पत्रों में अनेक बार यह बात लिख दी थी कि लेखक उसके आसपास ही रहता है। वह उसकी प्रत्येक गति-विधि का निरीक्षण किया करता है; पर स्वयं अदृश्य रहता है। इस कारण वह प्रत्येक वस्तु को अत्यन्त जिज्ञासापूर्वक देखती थी। उसकी प्रसन्नता छिपी न रह सकी। दोनों नीरस वृद्धाओं तक को सन्देह होने लगा। उन्हें भी उसकी चाह में चांचलता दिखाई देने लगी। उसके गालों की सुर्खी भी उन वृद्धाओं ने देख ली थी। वे एक-दूसरे की ओर अर्थ-भरी दृष्टि से देख कर मुस्कराने लगीं। उसकी वाणी में माधुर्य, आत्म-विश्वास और संगीत का समावेश हो गया। ऐसा प्रतीत होता था, मानो तुरन्त ही गीत उसके कण्ठ से फूट निकलेगा।...हाँ, तो वह गुड़िया नाचने लगी और मैं उसकी डोरी खींचने लगा। अपने-आपको सन्देह से बचाने के लिए (क्योंकि कभी-कभी वह सन्देहपूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखने लगती थी) मैंने एक पत्र में यह लिख दिया कि इन पत्रों का लेखक कैडेनेविया में नहीं ठहरा हुआ है, बल्कि पास के ही एक स्थान में रहता है और हर रोज़ स्टीमर से आया-जाया करता है। तब से जब भी स्टीमर के आने की घण्टी बजती, अपनी माँ के सन्देह से बचने के लिए वह किसी न किसी बहाने, घाट के किनारे से उतरने वालों को निःश्वास होकर देखा करती।

“एक दिन तीसरे पहर आकाश मेघाच्छन्न था। मुझे और कोई काम न था, इसलिए उसी को देख रहा था। उस दिन

एक अजीब बात हुई। उतरने वाले मुसाफिरोँ में एक खूब-सूरत आदमी था। वह इटालियनों की भाँति कई कपड़े पहने हुए था। वह उतर रहा था कि उसकी आँखें इस लड़की की ढूँढ़ती हुई आँखों से जा मिलीं। अनिच्छापूर्वक उसके होंठों पर मुस्कराहट खेल गई। उसके गाल सुर्ख हो गए। वह युवक चौंक उठा और उसकी ओर टकटकी लगा कर देखने लगा। स्वाभाविक तौर पर वह इन व्यग्र नेत्रों के आवाहन पर मुस्कराया और उसकी ओर बढ़ चला। वह भागी; एक क्षण को रुकी, शायद इसलिए कि वह उसका चिराकांक्षित प्रेमी था। फिर तेज़ी से वह बढ़ने और घूम-घूम कर पीछे की ओर देखने लगी। भय और आकांक्षा, ओत्सुक्य और लज्जा की वह पुरातन आँखमिचौनी ! वह दुविधा ! इस तरह बढ़ावा मिलने पर, आश्चर्यचकित होते हुए भी, वह युवक उसके पीछे लग गया। एक बार तो उसने पकड़ ही लिया होता। मैं घबरा रहा था कि जो महल मैंने बनाया था, वह ध्वंस होने को था। लेकिन तब तक दोनों वृद्धाएँ रास्ते में मिल गईं। भयभीत पक्षी की भाँति वह उनकी ओर रक्षा के लिए भागी। युवक धीरे से लौट पड़ा; लेकिन जब तक वह लौट न पड़ा, वह और लड़की एक-दूसरे की ओर देखते रहे। अब मुझे अपना खेल समाप्त करने की पूर्व-सूचना मिल चुकी थी; लेकिन अब भी मैं उसका प्रलोभन रोकने में असमर्थ था। अन्त में मैंने सब काल-लब्धि पर छोड़ दिया और शाम को एक बहुत लम्बा पत्र लिखा अभी तक इतना लम्बा पत्र मैंने उसे नहीं लिखा

था । इस पत्र को पढ़ने से उसके सन्देह की पुष्टि ही होती थी । खेल में एक के बजाय दो गुड़ियाँ हो जाने के कारण दूना आनन्द आने लगा ।

“दूसरे दिन सुबह मुझे कुछ गड़बड़ी दिखाई दी । मैं चौकन्ना हो गया । और दिनों की चंचलता दुर्घटना के रूप में परिवर्तित हो चुकी थी । उस लड़की की आँखें डबडबाई हुई थीं और उसके चेहरे पर वही शान्ति छाई हुई थी, जो आँसुओं के आने वाले तूफान की प्रतीक है । मुझे एक सुनिश्चित आनन्द की आशा थी, पर उसके चेहरे पर निराशा छाई हुई थी । मैं भी उदास हो गया । मेरे खेल में विघ्न पड़ गया था । मेरी गुड़िया ने डोरी खींचने पर नाचना बन्द कर दिया था । मैं सोचने लगा कि आखिर मामला क्या है, लेकिन कुछ पता नहीं लगा । मैं उस घटना से चिन्तित तो था ही, अनजाने ही उसकी आँखों में मुझे आना अपराध दिखाई देने लगा । इसलिए मैं पूरे दिन के लिए बाहर निकल गया । शाम को जब मैं लौटा, तो मामला साफ़ हो चुका था । मेज़ पर उन लोगों का भोजन नहीं लगा था । वे लोग चले गए थे । वह लड़की अपने प्रेमी से विदाई के दो शब्द भी न कहने पाई । उसकी हिम्मत न पड़ी कि वह अपनी माँ और मौसी से आने वाली सुनहली घड़ियों के विषय में कुछ कह सके । उन लोगों ने उसका स्वप्न छिन्न-भिन्न कर डाला और उसे किसी छोटे से शुष्क कस्बे में लिवा ले गई । मुझे अपने मनोविनोद के ऐसे

अनुपयुक्त अन्त का अनुभव भी न था। अब तक उसकी निराश, आहत, पीड़ित दृष्टि में मुझे अपना अपराध दिखाई देता है। अब भी मुझे खयाल आता है कि उसे युवावस्था में ही मेरे कारण जो दुःख और अपमान भोगना पड़ा, उसकी छाया वर्षों तक उसे घेरे रहेगी। यही है मेरी कहानी। क्या किसी उपन्यासकार को इसमें बढ़िया कथानक न मिल सकेगा ?

“शायद मिल जाए। कम-से-कम मेरे लिए तो इसकी कीमत उससे कहीं अधिक है, जितना आपने कहा है। लेकिन इनमें से कथानक निकालना मुश्किल ही है; क्योंकि यह तो केवल कथा की भूमिका-मात्र है। जब लोग एक-दूसरे के जीवन में आते हैं और इस प्रकार बिना कोई प्रभाव डाले चले जाते हैं, तो यह भूमिका नहीं, तो और क्या है ? कहानी का अन्त भी तो होता है।”

“आप जो कहना चाहते हैं, वह मैं समझ गया। शायद आप यह जानना चाहते हैं कि उस लड़की पर कैसी बीती ? वह अपने घर चली गई और वहाँ कैसे दिनों-दिन...”

“जी नहीं, मुझे इसका खयाल नहीं। लड़की के बारे में जानने की तो मुझे ज़रा भी दिलचस्पी नहीं। युवा लड़कियाँ अपने बारे में चाहे जितनी कल्पनाशील हों, उनके अनुभव प्रायः एक-से होते हैं। आपकी भूमिका की पात्री भी किसी

सुयोग्य धनिक से शादी कर लेगी और यह घटना केवल एक स्मृति-मात्र रह जाएगी । मैं उस लड़की के बारे में चिन्तित नहीं हूँ ।”

“आपने तो मुझे आश्चर्य में डाल दिया । मैं नहीं समझना कि उस युवक के बारे में आपको जिज्ञासा क्यों है ? इस प्रकार के अनुभव तो प्रायः प्रत्येक पुरुष को अपनी युवावस्था में होते हैं । हममें से अधिकतर लोग तो इन पर ध्यान ही नहीं देते, और जो ध्यान देते हैं, वे भी जल्दी ही भूल जाते हैं । जब तक हमलोग बुढ़े नहीं हो जाते, तब तक हम लोगों को इसका भान ही नहीं होता कि यही क्षण हमारे जीवन के सबसे उत्तम और गहरे अनुभव के हैं । यही यौवन का सबसे अधिक मूल्यवान् विशेषाधिकार है ।”

“नहीं महाशय, न मैं उस युवक के बारे में ही सोच रहा था ।”

“तब क्या ?”

मैं तो उस प्रौढ़ की कहानी कहना चाहता हूँ, जो पत्र भेजा करता था । कोई भी आदमी—चाहे वह कितनी उम्र का क्यों न हो—इस प्रकार के छद्म प्रेम के उत्साहपूर्ण पत्र बिना पूरी क्रीमत्त चुकाए लिख सकेगा, इसमें मुझे सन्देह है । मैं यह दिखलाने की चेष्टा करूँगा कि वह आदमी, जो अभी

तक यही समझता रहा कि वह एक खेल कर रहा है, स्वयं अपने फैलाए जाल में कैसे फँस गया। हमें यह जान लेना चाहिए कि उस बढ़ते हुए सौन्दर्य की ओर (जिसे वह समझता रहा कि वह निष्काम भाव से देखता है) वह स्वयं आकर्षित हो गया, उसका दास हो गया। जब मामला उसके हाथ से बाहर निकला जा रहा था, तो उसे अपने खेल और खिलौने के प्रति तीव्र आकर्षण हो रहा था। प्रेम में एक प्रौढ़ और एक अपरिपक्व युवक की भावनाएँ एक-सी होती हैं; क्योंकि दोनों में अपनी अयोग्यताएँ की चेतना रहती है, दोनों को इसका ज्ञान है। इस पत्र-लेखक को भी प्रणय-वेदना होगी; आशा और निराशा वारी-वारी से उसे घेरेंगी। मैं कयाकार होऊँ, तो यह पात्र उस लड़की को एक बार और देखने का प्रयत्न करेगा; लेकिन अन्त में हिम्मत की कमी के कारण उसकी आँखों के सामने नहीं जाएगा। वह उसी जगह वापस आ जाएगा, जहाँ से उसने अपना खेल प्रारम्भ किया था। यहाँ उस लड़की से भेंट की आशा में दिन-पर-दिन बिता देगा। वह सब-कुछ भाग्य के भरोसे छोड़ बैठेगा; पर निर्मम भाग्य उसका साथ न देगा। मैं इस कहानी को यहीं समाप्त करूँगा।”

“शलत, एकदम शलत !”

मैं विस्मित हो उठा। मैं जो आवाज़ सुन रहा था, वह कठोर थी, लेकिन उसमें कम्पन था। इसके पहले कभी भी

मैंने अपने मित्र को भाव-विभोर होते नहीं देखा था । उसी क्षण मैं समझ गया कि अनजाने में मैंने उनके घाव को कुरेद दिया है । भावावेग के कारण वे निश्चल हो गए, और जब मैंने घूमकर उनकी ओर देखा, तो उनके सफेद बालों को देख कर मुझे अत्यन्त खेद हुआ । जो कुछ भी मैं कह गया था, उसका भिन्न अर्थ समझाने का मैंने असफल प्रयत्न किया; लेकिन यह प्रयत्न उन्हें ज़रा भी मान्य न था ।

अब वे अपने सामान्य रूप में आ गए थे । उन्होंने अपने-आपको सम्हाला और शान्त, लेकिन खिन्न स्वर में कहा— “आप ही ठीक कहते हैं । इस कहानी का यही सबसे अधिक दिलचस्प अन्त होगा । बालजक ने भी इसी तरह की बात कही है और उसकी एक कहानी का शीर्षक भी कुछ ऐसा ही है । इस विषय पर कितनी ही कहानियाँ और लिखी जा सकती हैं । लेकिन जिन लोगों को प्रेम का अधिक अनुभव है, वे अपनी सफलता के बारे में अधिक बात करते हैं, विफलता के बारे में कम । उनका खयाल है कि उनकी विफलता की बात उन्हें हास्यास्पद रूप में प्रदर्शित करेगी । लेकिन असली बात यह है कि सफलता और विफलता दोनों काल-चक्र के अधीन हैं ।

इसके बाद उन्होंने मुझसे हाथ मिलाया । उनके स्वर में से कम्पन निकल चुका था । बोले— “मैं देखता हूँ कि ग्रीष्म की शाम को किसी युवक को कहानी सुनाना खतर-

नाक है । इससे अनेक अनावश्यक कल्पनाएं और स्वप्न जाग उठते हैं । अच्छा, प्रणाम ।”

इसके बाद वे रात्रि के अन्धकार में विलीन हो गए । उनके कदमों में फुर्ती थी, लेकिन उम्र का तकाजा था और इस कारण वे कुछ अनियंत्रित हो गए थे । काफी देर हो चुकी थी । इस तरह की दुर्वह रात्रि को जो क्रान्ति होनी चाहिए थी, वह आज नहीं थी—इसका कारण यह था कि जब कोई अजीब बात हो जाती है, सहानुभूतिपूर्ण हृदय के कारण जब कोई किसी दूसरे के अनुभवों को स्वानुभूत कर लेता है तो खून में एक प्रकार की हलचल पैदा हो जाती है । मैं उस शान्त और सूनी सड़क पर ‘विला कार्लोटा’ तक चला गया, वहाँ संगमरमर का घाट बना हुआ है । मैं इन ठंडी सीढ़ियों पर बैठ गया । रात बड़ी सुहानी थी । ‘बेलागियों’ नगर की बत्तियाँ जो अभी तक पत्तों में से चमकते हुए जुगनुओं की भाँति पास ही दिखाई देती थीं, अब बहुत दूर दिखने लगीं । इस नीरव झील की उपमा खूब झिलमिलाने वाले काले मणि से दी जा सकती है । सुन्दर गौर वर्ण कोमल करों के समान छोटी-छोटी लहरें नीचे की सीढ़ी को छू-छूकर भाग रही थीं । ऊपर तारों भरे आकाश का निस्सीम विहान था । कभी-कभी हवा का तेज झोंका स्थान-च्युत तारिका की भाँति पर्वतों, अपत्यकाओं, जलाशयों को लांघता हुआ रात्रि के अंधकार में विलीन हो जाता था, जैसे हमारे प्राण किसी अंध-शक्ति से प्रेरित होकर अज्ञात्-अनंत में डूब जाते हैं ।

✧ भगोड़ा

सन् १९१८ की गर्मियों में एक रात को स्विज़रलैण्ड के छोटे-से नगर विलेन्यूव के पास लेक जेनेवा में एक मछुआ अपनी डोंगी खे रहा था। उसे पानी की सतह पर कोई असाधारण चीज़ उतराती हुई नज़र आई। पास पहुँचने पर उसने देखा कि एक नग्न मानव शरीर लकड़ी के तख्तों से चिपका हुआ पार लगने की चेष्टा कर रहा है। वह थक चुका था और ठण्ड से सिकुड़ गया था। यह देख कर मछुए को दया आ गई और उसने इस काँपते हुए यात्री की अपनी नाव पर चढ़ा लिया। ठण्ड दूर करने के लिए कोई वस्त्र न होने के कारण उसने अपना जाल अच्छी तरह उढ़ा दिया और

बातचीत करने की कोशिश करने लगा । वह अपरिचित शरणार्थी सिकुड़ कर नाव की तली में पड़ा रहा । उसने उत्तर तो दिया किन्तु ऐसी भाषा में जिसका एक अक्षर भी मछुए की समझ में नहीं आया । हार कर उसने अपने जाल समेट लिए और स्थल की ओर खेना शुरू किया ।

प्रभात के उजाले में जब किनारा साफ दिखाई देने लगा तो उस नग्न व्यक्ति के चेहरे पर प्रसन्नता का भाव आ गया । बेतरतीब बढ़ी हुई दाढ़ी-मूछों से आधे ढके उसके चेहरे पर मुस्कराहट आ गई । किनारे की ओर इशारा करके बार-बार 'रोशिया', 'रोशिया' शब्द उसके मुँह से निकालने लगा; उसका भाव प्रश्नसूचक था । जैसे-जैसे नाव किनारे की ओर बढ़ती गई, उसकी आवाज़ में आत्मविश्वास और खुशी का अनुपात भी बढ़ता गया । अन्त में नाव किनारे लगी । मछुए के घर की स्त्रियाँ रात-भर का शिकार उतारने के लिए दौड़ पड़ीं लेकिन पास आते ही उनके मुँह से चीख निकल गई और वे चौंक कर पीछे हट गई । मछुए के इस अजीब शिकार की खबर गाँव-भर में फैल गई और किनारे पर लोगों की भीड़ जमा हो गई । गाँव का मुखिया भी आ गया । पद-गौरव और आत्म-सम्मानपूर्ण इस अफसर को युद्ध के दौरान हैड-क्वार्टर से मिले सारे आदेश याद आने लगे । देखते ही उसे विश्वास हो गया कि आगंतुक किसी फ्रांसीसी सीमा से भाग कर आया है । उसने पूछ-ताछ शुरू की, लेकिन इस बातचीत

में एक व्यवधान बड़ा भारी था—उसे शीघ्र ही जात हो गया कि वे एक-दूसरे की भाषा का एक शब्द भी नहीं समझ सकते । अजनबी को अब तक पाजामा और एक कोट पहना दिया गया था । तमाम प्रश्नों के उत्तर में उसका केवल एक ही उत्तर होता था, “रोशिया-रोशिया ?” उसकी आवाज़ में गिड़गिड़ाहट थी । बातचीत न चलने पर मुखिया को थोड़ी झुंझलाहट आई और उसने शरणार्थी को अपने न्यायालय की ओर चलने का इशारा किया । चारों ओर कुतूहलवश लड़के इकट्ठे हो गये थे । बिना नाप के कपड़े पहने उस अजनबी ने आदेशानुसार काम किया । न्यायालय पहुँचने पर उसे सुरक्षित पहरे में बैठा दिया गया । उसने विरोध तो न किया, लेकिन फिर से एक बार उसके मुँह पर उदासी छा गई और वह झुक गया, मानो मार पड़ने का इंतज़ार कर रहा है ।

मछुए के इस आश्चर्यजनक शिकार का समाचार शीघ्र ही आस-पास के होटलों में भी पहुँच गया । इन होटलों में ठहरे हुए यात्रियों को तो मानो मनोरंजन का एक साधन ही मिल गया; उनके झुण्ड के झुण्ड उसे देखने के लिए आने लगे । एक महिला ने उसे कुछ मिठाई देनी चाही, लेकिन उसने संशयवश छुई भी नहीं । एक यात्री ने उसका चित्र खींच लिया । इस तमाशे को देखकर वे प्रसन्नतापूर्वक बातचीत करने लगे । अन्त में आस-पास के सबसे बड़े होटल का मैनेजर आया । वह कई देशों में घूम चुका था और कई भाषाएँ जानता था । उसने इस सहमे हुए अजनबी से बारो-बारी से

जर्मन, इटालियन, अँग्रेजी और अन्त में रूसी भाषा में बात करनी चाही। रूसी का प्रथम शब्द सुनते ही उसके चेहरे पर फिर मुस्कराहट आ गई। उसने तुरन्त ही अपनी कहानी शुरू कर दी। उसकी कहानी लम्बी और अव्यवस्थित थी, कहीं-कहीं मैनेजर की समझ में भी नहीं आ सकी। उसका सारांश नीचे दिया जाता है :

वह रूस के युद्ध में लड़ा था। एक दिन उसे लगभग एक हजार आदमियों के साथ रेलगाड़ी में भर दिया गया और लम्बी यात्रा के बाद जहाज़ पर सवार करा दिया गया। यह समुद्र-यात्रा रेल-यात्रा से ¹⁸ लम्बी निकली। समुद्र पार करना पड़ा और उसी के शब्दों में उसका पानी इतना गरम था कि उसकी हड्डियाँ तक उबलने को आ गई। इसके बाद उन लोगों ने भूमि पर फिर पैर रखा और दूसरी रेल-यात्रा प्रारम्भ हो गई। इस यात्रा के बाद फ़ौरन ही इन लोगों को एक पहाड़ी पर हमला करने के लिए भेज दिया गया। इस युद्ध के बारे में वह और कुछ नहीं जानता था, क्योंकि प्रारम्भ में ही उसके पैर में गोली लगी और वह गिर पड़ा।

होटल का मैनेजर दुभाषिए का काम कर रहा था; वह प्रत्येक वाक्य का अनुवाद करके श्रोताओं को सुना रहा था। सब लोग समझ गए कि वह रूसी सिपाही है; एक डिवीज़न के साथ उसे साइबेरिया पार करके ब्लाडीवोस्टक भेजा गया

और वहाँ से जहाज में फ्रांस । जिज्ञासा ने सहानुभूति को जन्म दिया; प्रत्येक श्रोता यह जानने की चेष्टा कर रहा था कि आखिर वह इस शील तक पहुँचा कैसे ।

वह मुस्कराया । उसकी मुस्कराहट में कोई छिपाव-दुराव न था । रूसी ने बताया कि अस्पताल में उसने पूछा कि रूस किधर है । किसी ने उसे उसके देश की दिशा बता दी । इसके बाद जैसे ही उसमें चलने की शक्ति आई, वह अस्पताल से भाग निकला । सूर्य और तारों से उसने दिशा का अनुमान लगाया । वह रात में चलता और दिन में घास में छिपा रहता । भोजन के लिए वह फल इकट्ठे कर लेता था और कभी रोटी भी माँग कर खा लेता था । अन्त में दस रात चलने के बाद वह शील पर आ पहुँचा । यहाँ कुछ गड़बड़ी हुई । उसका घर बैकल शील के पास था; उसने समझा कि इस जेनेवा शील के पास ही उसका घर है । एक झोंपड़ी में से वह दो तख्ते चुरा लाया और इन्हीं के सहारे वह शील पार कर रहा था कि उसे मछुआ मिल गया । उसने अपनी कथा एक उत्साहपूर्वक प्रश्न से समाप्त की "क्या मैं कल अपने घर पहुँच जाऊँगा ?"

उसके इस भोलेपन पर सबको हँसी आ गई लेकिन साथ ही उनकी सहानुभूति भी जाग पड़ी । उन्होंने थोड़ा-थोड़ा करके इस कातर, अश्रुपूर्ण भगोड़े के लिए चन्दा जमा किया ।

लेकिन तब तक टेलीफोन से खबर पाकर एक ऊँचे ओहदे का पुलिस अफसर आ गया। रिपोर्ट तैयार करने में उसे कम कठिनाई न पड़ी। कुछ कठिनाई तो दुभाषिए के कारण थी और कुछ इस अजनबी के बेढगपन से। अपने बारे में सिवाय नाम के उसे कुछ भी नहीं मालूम था और नाम का भी आधा हिस्सा ! 'बोरेस', नाम का उत्तरार्ध उसे मालूम नहीं। वह अपनी पत्नी और बच्चों के साथ बड़ी झील से पचास मील की दूरी पर रहता था। वे सब प्रिन्स मेचस्की के 'सर्फ' (गुलाम) थे। वह अपने को केवल 'सर्फ' ही बतलाता था, यद्यपि इस प्रथा को विलोन हुए पचास साल से भी ऊपर हो चुके थे।

अब लोगों ने उसके भविष्य के बारे में सोचना शुरू किया; सबके बीच में वह स्वयं सिर झुकाए उदास खड़ा था। कुछ लोगों की राय थी कि उसे बर्न स्थिति रूसी दूतावास में भेज देना चाहिए। कुछ कहते थे कि ऐसा करने से उसे फिर फ्रान्स भेज दिया जाएगा। पुलिस अफसर यह निश्चित नहीं कर पा रहा था कि उसे युद्ध से भागा हुआ सैनिक माना जाए या बिना प्रमाण पत्र के मामूली विदेशी। ज़िले के हाकिम ने कहा कि उसे खाने और ठहरने के लिए वहाँ के समाज पर निर्भर रहने का कोई अधिकार नहीं। एक फ्रान्सीसी ने कहा कि इस अभागे भगोड़े का मामला बहुत आसान है; या तो उससे काम लिया जाए या उसे देश की

सोमा के बाहर छोड़ दिया जाय । दो स्त्रियों ने इसका विबंध किया, दुर्भाग्य के लिए उसे दोष क्यों दिया ? लोगों का घर छुड़ा कर विदेश भेज देना स्वयं एक अपराध है । इसी प्रकार की बहस चल रही थी कि एक डेन्मार्क निवासी ने एक सप्ताह तक इस आदमी के रहने और खाने का खर्च देने का भार अपने ऊपर ले लिया । तब तक वहाँ के हाकिम रूसी दूतावास से सलाह भी कर लेंगे । इस हल से सारा झगड़ा खतम हो गया और हाकिम की भी उलझन मिट गई ।

जिस समय यह गरमा-गरम बहस चल रही थी उस समय इस भगोड़े की कातर आँखें होटल के मैनेजर के मुँह पर लगी हुई थीं । वही एक ऐसा व्यक्ति था जो उसे उसके भाग्य-निर्णय के बारे में बता सकता था । उसे ज्ञात हो गया था कि उसके आने से कई मुश्किलें उठ खड़ी हुई थीं । अब जब झगड़ा शान्त हो गया तो उसने अपने जुड़े हुए हाथ मैनेजर की ओर उठाए, जैसे कोई स्त्री देवप्रतिमा की आराधना कर रही हो । इस भाव-भंगिमा से सब द्रवित हो गए । मैनेजर ने उसे बड़े स्नेह से समझाया कि घबड़ाने की कोई बात नहीं है । उसे कुछ दिन वहाँ रहने दिया जाएगा और उसे किसी तरह की तकलीफ नहीं होगी । जिस चीज की भी उसे आवश्यकता होगी, गाँव की सराय में ही भेज दी जाएगी । रूसी ने मैनेजर का हाथ चूमना चाहा, लेकिन मैनेजर इस कृतज्ञता-प्रकाशन को समझ न सका और उसने इसे स्वीकार न किया । वह इस शरणार्थी को सराय में ले गया, और वहाँ सोने-ठहरने का

प्रबन्ध करवा दिया । साथ ही उसे समझा दिया कि सब काम ठीक हो जाएगा, परेशान होने की कोई जरूरत नहीं । फिर मित्रतापूर्वक झुक कर प्रणाम करने के बाद उसने होटल का रास्ता लिया ।

जब तक मैनेजर अपने होटल में धुस कर आँखों से ओझल न हो गया, अजनबी उसकी ओर देखता रहा । ज्यों-ज्यों वह दूर होता गया, त्यों-त्यों उसके चेहरे पर उदासी आती गई । केवल वही एक ऐसा व्यक्ति था जो उसकी बात समझ सकता था । जो लोग उसे घेरे थे, उसकी मुद्रा को विरोधपूर्वक देख रहे थे, पर उसका ध्यान इनकी ओर तनिक भी न था । एक आदमी ने धीरे से उसका कंधा पकड़ कर हिलाया और उसे सराय का दरवाज़ा दिखा दिया । सिर झुकाए हुए अजनबी ने अपने इस नए घर में प्रवेश किया । वहाँ किसी ने उसे शराब-घर बता दिया और नौकरानी ने एक गिलास ब्राण्डी से उसका स्वागत किया । सुबह उसने यहीं बितायी—सारे समय उसके चेहरे पर उदासी छाई रही । गाँव के बच्चे खिड़कियों से झाँक-झाँक कर उसकी ओर देखते रहे; कभी-कभी वे उसे आवाज़ भी देते थे, लेकिन वह इस ओर कोई ध्यान नहीं देता था । ग्राहक उसकी ओर आश्चर्य से देखते थे लेकिन वह आँखें नीचे किए बैठा रहा । भोजन के समय सारा कमरा हँसी-मज़ाक से गूँज उठा लेकिन रूसी की समझ में उनका एक भी शब्द नहीं आया । उसे यह सोच कर बड़ी

व्यथा हो रही थी कि इन लोगों के बीच वह अजनबी था, गूंगा बहरा था, इन आदमियों के बीच जो अपने भावों को एक-दूसरे पर सजीव रूप से व्यक्त कर रहे थे। उसके हाथ इतने काँप रहे थे कि वह मुश्किल से ही शोरबा पी सका। तभी उसके गाल पर चिल्ला बनाता हुआ एक आँसू मेज़ पर टपक पड़ा। शरमा कर उसने चारों ओर देखा। दूसरे लोगों ने उसकी मनोव्यथा समझ ली और कमरे में सन्नाटा छा गया। धीरे-धीरे उसका माथा काली मेज़ से लग गया।

शाम तक वह शराब-घर में ही बैठा रहा। लोग आते थे और चले जाते थे, लेकिन न अब उन लोगों में ही उसके प्रति कोई दिलचस्पी थी और न उसे उनकी चिन्ता। वह भट्टो के पास मेज़ पर कोहनी टिकाए बैठा था। उसकी उपस्थिति को सब लोग भूल चुके थे।

शाम के धुंधले में वह उठ कर बाहर चला गया। उसके चले जाने पर किसी ने भी ध्यान न दिया। मूक पशु की भाँति वह धीरे-धीरे होटल तक गया और टोपी उतार कर दीन-भाव से दरवाज़े की सीढ़ियों पर बैठ गया। इस प्रकार लगभग एक घंटे तक वह किसी का ध्यान आकर्षित किए बग़ैर वहाँ बैठा रहा। अन्त में रोशनी से जगमगाते हुए होटल के सामने इस जड़वत् बैठे व्यक्ति पर दरबान की नज़र पड़ी। वह मैनेजर को बुला लाया। मैनेजर के प्रथम शब्द से ही इस रूसी के चेहरे पर फिर से एक मुस्कराहट खेल गई।

“तुम क्या चाहते हो, बोरिस ?” मैनेजर ने सहृदयता से पूछा ।

“क्षमा कीजिए श्रीमान्, मैं केवल यह जानना चाहता हूँ.....कि.....कि मैं अपने घर चला जाऊँ ?” उसने शिक्षक को उत्तर दिया ।

मैनेजर ने मुस्करा कर कहा, “हाँ, बोरिस, तुम घर चले जाना ।”

“कल ही ?”

इस पर मैनेजर के भाव में गम्भीरता आ गई । ये शब्द अत्यन्त विनीत भाव से प्रार्थना के रूप से कहे गए थे; उसकी मुस्कराहट विलीन हो गई ।

“नहीं बोरिस, अभी नहीं, जब तक युद्ध समाप्त न हो जाए, तब तक नहीं ।”

“तो कब तब श्रीमान् ? युद्ध कब समाप्त होगा ?”

“भगवान् ही जानता है, बोरिस; कोई भी नहीं बता सकता ।”

“तो तब मुझे इंतज़ार करना पड़ेगा । इसके पहले क्या मैं नहीं जा सकूँगा ?”

“नहीं बोरिस ।”

“क्या मेरा घर बहुत दूर है श्रीमान् ?”

“हाँ, दूर, बहुत दूर ।”

“वहाँ पहुँचने में बहुत दिन लगेंगे ?”

“हाँ बहुत दिन ।”

“लेकिन मैं खूब पैदल चल सकता हूँ, मज्जदूर आदमी हूँ, थकूँगा नहीं ।”

“नहीं बोरिस, तुम ऐसा नहीं कर सकोगे । तुम्हें अपने घर पहुँचने के पहले ही दूसरी सीमा पार करनी पड़ेगी ।”

“सीमा ?” वह व्याकुल हो उठा । उसके लिए तो इस शब्द का कोई अर्थ नहीं था । फिर भी जोर देकर उसने कहा : “मैं तैर कर झील पार कर लूँगा ।”

मैनेजर कठिनाई से मुस्कराहट रोक सका, लेकिन उसे इस आदमी के दुर्भाग्य पर बड़ी बेदना हो रही थी । उसने धीरे से कहा, “नहीं बोरिस, तुम्हें यह भी न करने दिया जाएगा । ‘सीमा’ का अर्थ होता है विदेश । वहाँ के निवासी अपने देश में होकर तुम्हें गुजरने भी न देंगे ।”

“लेकिन मैं तो उनका कुछ भी बिगाड़ूँगा नहीं । अपनी बंदूक मैं फेंक चुका हूँ । जब मैं ईसा के नाम पर उनके देश में

से होकर निकलना चाहूँगा तो भी वे मुझे अपने घर अपनी पत्नी के पास जाने से रोकेंगे ?”

मैनेजर का चेहरा और भी उतर गया। उसके हृदय में कड़वाहट भर गई।

“नहीं बोरिस, वे तुम्हें ईसा के नाम पर भी न गुजरने देंगे, मानव के लिए अब ईसा के शब्दों का कोई भी मूल्य नहीं रहा।”

“तो फिर मैं क्या करूँ श्रीमान् ? मैं यहाँ नहीं रह सकता। यहाँ कोई मेरी बात भी नहीं समझता, न मैं ही किसी की बात समझता हूँ।”

“थोड़े दिनों में समझने लगोगे।”

“नहीं श्रीमान्, मैं कभी न समझ सकूँगा। मैं तो सिर्फ जमीन जोत सकता हूँ और कुछ नहीं जानता। मैं यहाँ क्या करूँगा ? मैं तो अपने घर जाना चाहता हूँ, मुझे रास्ता बता दीजिए, श्रीमान्।”

“कोई भी रास्ता नहीं है, बोरिस।”

“लेकिन मुझे अपनी बीबी-बच्चों के पास जाने से कोई भी नहीं रोक सकता। मैं अब सिपाही नहीं हूँ।”

“हाँ बोरिस, रोक सकते हैं।”

“लेकिन ज़ार ? ज़रूर वे मेरी मदद करेंगे।” एकाएक उसके दिमाग में यह विचार आया था। आशा से वह काँपने लगा; ज़ार का नाम उसने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक लिया था।

“ज़ार अब नहीं हैं, बोरिस, उन्हें गद्दी से उतार दिया गया।”

“ज़ार नहीं रहे ?” वह मैनेजर की ओर देखता रह गया। आशा की किरन छिप चुकी थी; उसकी आँखों से आशा-ज्योति बुझ चुकी थी। उसने उदास हो कर कहा, “तो क्या मैं घर नहीं पहुँच सकूँगा।”

“अभी नहीं, उसके लिए तुम्हें ठहरना पड़ेगा।”

“तो क्या बहुत दिन लग जाएँगे ?”

“मालूम नहीं, बोरिस।”

अंधकार में उसके मुँह पर और भी निराशा छा गई।

“मैं इतना तो इंतज़ार कर चुका, श्रीमान् ! मैं कैसे ठहरूँ ? मुझे रास्ता दिखा दीजिए श्रीमान्, मैं कोशिश करूँगा।”

“कोई भी रास्ता नहीं बोरिस ! सीमा पर लोग तुम्हें गिरफ्तार कर लेंगे । यहीं ठहरो, हम लोग तुम्हारे लिए कोई काम तलाश कर लेंगे ।”

“लेकिन यहाँ कोई मेरी बात तो समझता ही नहीं । मैं भी किसी की बात नहीं समझता । नहीं, मैं अब यहाँ नहीं रह सकूंगा । सहायता कीजिए श्रीमान् ।”

“मैं कुछ भी नहीं कर सकता, बोरिस ।”

“भगवान के लिए मेरी सहायता कीजिए; मेरी सहायता कीजिए, उसके सिवाय मेरे लिए कहीं कोई भी आशा नहीं है ।”

“मैं तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता, बोरिस । अब लोग एक-दूसरे की सहायता भी नहीं कर सकते ।”

दोनों एक-दूसरे की आँखों की ओर देख रहे थे । बोरिस अपनी टोपी हाथ में लिए उसे मोड़ रहा था ।

“तो वे लोग मुझे घर से लाए ही क्यों ? मुझसे तो यही कहा गया था कि मुझे रूस के लिए और ज़ार के लिए लड़ना है । लेकिन आप कहते हैं कि रूस बहुत दूर है, और ज़ार, आपने क्या बताया, ज़ार का क्या हुआ ?”

“ज़ार को गद्दी से उतार दिया गया है।”

“गद्दी से उतार दिया गया !” उसने दुहराया । “तो मैं क्या करूँ, श्रीमान् ? मुझे तो घर तो जाना ही है; मेरे बच्चे मेरे लिए रो रहे होंगे । मैं यहाँ नहीं रह सकता । मेरी मदद कीजिए श्रीमान, मेरी मदद कीजिए ।”

“मैं कुछ नहीं कर सकता, बोरिस ।”

“कोई कुछ नहीं कर सकता ?”

“नहीं, अभी कोई नहीं ।”

विषाद से रूसी का सिर और भी झुक गया । इसके बाद उसने वेदना भरे स्वर में कहा, “मैं आपका कृतज्ञ हूँ, श्रीमान् ।” और वह चला गया ।

धीरे-धीरे वह पहाड़ी के नीचे उतर गया । मैनेजर उसकी ओर देखता रहा ! उससे आश्चर्य हो रहा था कि बोरिस सराय में क्यों नहीं घुसा । वह झील की तरफ बढ़ता चला जा रहा था । एक ठंडी साँस लेकर मैनेजर अपने काम पर चला गया ।

संयोग की बात है कि जो मछुआ उस साइबेरियन को झील में से जीवित निकाल कर लाया था, उसी को दूसरे

दिन सुबह उसका मृत शरीर उतराता हुआ मिला । उसने दान का कोट और पाजामा तह करके सम्हाल कर किनारे पर ही रख दिया था । टोपी भी पास ही रखी थी और जल में से जैसा नग्न वह निकला था, वैसा ही फिर घुसा था । उस विदेशी का नाम और पता कोई जानता नहीं इसलिए उसकी क़ब्र पर स्मारक की जगह बिना नाम का लकड़ी को क्रॉस बना दिया गया ।



शुद्धि पत्र

पृ. सं.	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	१९	वृत्तांत	वृत्तांत को
८	९	उपयोग	उपभोग
८	१८	किनी	किसी
११	२१	दह	वह
१४	१०	संगिनों	संगियों
४५	१५	सुसंगठित से	सुसंगठित ढंग से
५४	८	विरुद्ध	निरुद्ध
७३	२०	विस्तृत	विस्मृत
९४	२	दाव	दग्न
९४	१३	लुटने	लुटाने
११४	दूसरा पैरा	अब वह चलती	“अब वह चलती
११५	७	चाह	चाल
११८	अंतिम पैरा	न मिल सकेगा।	न मिल सकेगा।”
११९	”	मैं तो उस	मैं तो उस
१२२	६	क्रांति	“क्लांति
१२२	१९	विहान	वितान
१२२	२१	अपत्यकाओं	उपत्यकाओं



नियमावली

१. इस संस्था का उद्देश्य सत्साहित्य का प्रकाशन और उसका साहित्यानुरागियों में वितरण है।
२. इस संस्था के सदस्य तीन प्रकार के होंगे :—
 - (१) संरक्षक, जो संस्था को १००० रुपये की सहायता दे।
 - (२) आजीवन, जो संस्था को १०० रुपये की सहायता दें।
 - (३) स्थायी, जो संस्था को सदस्य बनने की तिथि तक प्रकाशित सभी पुस्तकों के मूल्य के अतिरिक्त १० रुपये मदस्यता शुल्क दें।
३. सभी सदस्यों को समिति के सभी प्रकाशन बिना मूल्य दिये जाएंगे।
४. संरक्षकों को अधिकार होगा कि वे किन्हीं १० संस्थाओं अथवा व्यक्तियों को समिति के प्रकाशन प्राप्त करने का अधिकारी बना दें।
५. लेखकों को समिति से उचित रायल्टी दी जाएगी। —संयोजक।

समिति के संरक्षक

१. राजा वृन्दावनलाल पित्ती, बेगमबाजार, हैदराबाद
२. श्री रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी, ८, लाजपतकुंज, आगरा
३. श्री वृन्दावनदास, बी. ए., एल-एल. बी., प्रकाश भवन, मथुरा
४. श्री जगदीश प्रसाद अग्रवाल, एजुकेशनल प्रेस, आगरा
५. श्रीमती लीला गोयल, दिल्ली



समिति के प्रकाशन

१. साहित्य	०.५०
२. द्वितीय महासम्मेलन	०.५०
३. प्रसाद का आँसू (द्वितीय संस्करण प्रेम में) समाधि	३.००
४. विश्राम (नाटक)	२.००
५. भर्तृहरि शतक (नवीन संस्करण प्रेम में) तीन आठुनियाँ—“शिशु”	२.५०
६. मजरी (नवीन संस्करण प्रेम में) विजया	६.००
७. वृन्दावन (कविता)	१.२५
८. झाँसी की रानी (नाटक)	२.००
९. तीन फूल (अनूदिन कविताएँ)	०.७५
१०. वनवासी (कविताएँ)	१.५०
११. अंग्रेजी नाट्य साहित्य (नवीन संस्करण प्रेम में) यह सब सच है	३.००
१२. अचंसा (कविताएँ)	३.००
१३. वीरजा (कविताएँ)	०.५०
१४. श्रेष्ठ कहानियाँ	२.००
१५. यूरोप की डायरी (नवीन संस्करण प्रेम में) नदी किनारे—“शिशु”	३.००
१६. संत ज्ञानेश्वर (नवीन संस्करण प्रेम में) मराठी के आद्य उपन्यासकार	४.००
१७. नीहारिका (कविताएँ)	०.५०
१८. शिला और लहरें (कविताएँ)	१.५०
१९. होरेशस (कविता)	०.५०
२०. पशु (नाटक)	१.८०
२१. भरत भावना (कविता)	०.२०
२२. मनुस्मृति (ब्रजभाषा कविता) (द्वितीय संस्करण प्रेम में)	

२३. बात तो थी (कहानियाँ)	१.५०
२४. बँगला कहानियाँ	१.५०
२५. रजकण (कहानियाँ)	१.५०
२६. बेत के निशान (कहानियाँ)	२.५०
२७. न्यू नायिका भेद (व्यंग्य)	०.५०
२८. पिकनिक (हास्यपूर्ण कविताएँ)	१.००
२९. शोकाञ्जलि (ग्रे का अनुवाद)	१.००
३०. पाहन के फूल (नवीन संस्करण प्रैस में)	
विधवा सुहागिन	३.००
३१. दम्पति वाक्य विलास (ब्रज-भाषा)	१०.००
३२. सुपर्णा (कविताएँ)	२.००
३३. प्रेरणा के स्रोत	३.००
३४. काव्य नवनीत (ब्रजभाषा)	१.००
३५. मुस्कराते चेहरे (यात्रा)	२.००
३६. सावित्री (निबन्ध-संग्रह)	१.००
३७. प्रेम-प्रमून (कविताएँ)	१.५०
३८. जान पाण्डे (व्यंग्य लेख)	२.००
३९. महारानी लक्ष्मीबाई (कविता)	०.५०
४०. जैसा मैंने उन्हें देखा (संस्मरण)	१.००
४१. नीलकंठ गोकर्ण	०.८०
४२. अजन्ता से अब तक	२.००
४३. गुलाब की टहनी	३.००
४४. मुट्ठी-मुट्ठी अक्षत	२.००
४५. गान्धी गीता	१.००
४६. बाल नामदेव	०.५०
४७. पूर्णिमा—शिशु	१.००
४८. पुनर्जन्म	३.००

शीघ्र ही प्रकाशित होंगे :

१. बिखरे तिनके : (कहानियाँ) मधुसूदन चतुर्वेदी (प्रेस में)
२. यदुवंश : (महाकाव्य) स्व. हरदयाल सिंह
३. चतुर्वेदी समाज के लोक-गीत :
४. अजन्ता : एक परिचय—श्री धीरेन्द्रनाथ वर्मा (प्रेस में)
५. कविताएँ : वंशीधर शुक्ल
६. जयशंकर-जाह्नवी : स्व. हरदयाल सिंह
७. कहानियाँ : डॉ. आर्येन्द्र शर्मा
८. मनूहार : (कविताएँ) श्रीमती प्रतिभा गर्ग
९. कलावती : (आलोचनात्मक निबन्ध)
श्री रूपनारायण चतुर्वेदी
१०. निबन्ध-संग्रह : श्री वृन्दावन दास (द्वितीय संस्करण प्रेस में)
११. द्विवेदी जी के पत्र—श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी (प्रेस में)
१२. भाव विलास : महाकवि देव की रचना की आलोचना और टीका
श्री लक्ष्मी निधि चतुर्वेदी (प्रेस में)
१३. बिहारी अमृत : बिहारी सतसई का अमृतलाल चतुर्वेदी द्वारा
किया गया भाष्य ।
१४. संक्षिप्त सूरसागर : दतिया में प्राप्त प्रति के आधार पर
१५. काकली : स्व. कौशलेन्द्र राठौर (तृतीय संस्करण)

